परिशिष्ट

प्रथम अध्याय

ओमप्रकाश वाल्मीकि : जीवन परिचय

द्वितीय अध्याय

दलित विमर्श :

संकल्पना, स्वरूप, निर्धारण

तृतीय अध्याय

ओमप्रकाश वाल्मीकि का कथा साहित्य: दलित जीवन के विविध आयाम

उपसंहार

DECLARATION

I, the undersigned, **prof. D. P. Jadhav**. Assistant Professor of the Department of Hindi, Venutai Chavan College, Karad declare that the Minor Research Project entitled **" ओमप्रकाश वाल्मीकि के कथा साहित्य में चित्रित दलित जीवन "** sanctioned by University Grant Commission (W. Zone) is carried out by me. The collection of data, references and field observation are undertaken personally. To the best of my knowledge this is the original work and it is not published wholly or partly in any kind.

Place : Karad

Date :

prof. D. P. Jadhav

Principal Investihator

ओमप्रकाश वाल्मीकि के कथा साहित्य में चित्रित दलित जीवन

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (पश्चिम विभाग) की

लघुशोध परियोजना हेतु प्रस्तुत

लघु शोध प्रबंध

शोधकर्ता

प्रा. डी. पी. जाधव

एम.ए.,एम.फिल.,नेट

सहायक प्राध्यापक,

हिंदी विभाग,

वेणूताई चव्हाण कॉलेज, कराड

तह. कराड, जिला. सातारा (महाराष्ट्र)-415124

2015

अनुक्रमनिका

प्रथम अध्याय:— ओमप्रकाश वाल्मीकि : जीवन परिचय

पृ.०१—३४

१.१ जीवनवृत्त

१.१.१ जन्मतिथि एवं जन्मस्थान

१.१.२ परिवार जन

१.१.३ बचपन

१.१.४ शिक्षा — दीक्षा

१.१.५ प्रेरणा एवं प्रभाव

१.१.६ नौकरी — उपजीविका

१.१.७ विवाह

१.१.८ संतान

१.१.९ मृत्यु

१.२ व्यक्तित्व

१.२.१ जूझारू

१.२.२ साहसी एवं सत्यप्रिय

१.२.३ बहुभाषी

१.२.४ अध्ययनशील

१.२.५ नाटक प्रिय : निदेशक एवं अभिनेता

१.२.६ सहयोगी

१.२.७ रूढि, परंपरा एवं अंधश्रद्धा विरोधी

१.२.८ कथा—कथन

१.२.९ ज्ञान — लालसा

१.२.१० कर्मशील व्यक्ति

१.२.११ स्वाभिमानी

१.२.१२ संवेदनशील

१.२.१३ प्रतिभावान लेखक एवं कवि

१.३ कृतित्व

१.३.१ आत्मकथा — 'जूठन'

१.३.२ कहानी संग्रह

१.३.२.१ सलाम

१.३.२.२ घुसपैठिये

१.३.३ कविता संग्रह

१.३.४. आलोच्य कृति

१.३.४.१ दलित साहित्य का सोंदर्यशास्त्र

१.३.४.२ मुख्यधारा और दलित साहित्य

१.३.५ नाटक

१.३.६ अनुसंघानात्मक लेखन

१.३.६.१ सफाई देवता

१.३.६.२ दलित साहित्य : अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ :—

१.३.७ अनुवाद कार्य :—

१.३.८ अन्य

१.३.९ पुरस्कार

द्वितीय अध्याय:—दलित विमर्श: संकल्पना, स्वरूप, निर्धारण

पृ.३५—६७

२.१ दलित विमर्श

२.१.१ व्युत्पत्ति

२.१.२ अर्थ

२.१.३ 'दलित' शब्द की परिभाषा

२.१.३.१ संकल्पनाववादी परिभाषाएँ

२.१.३.२ उदारमतवादी परिभाषा

२.२ दलित चेतना

२.३ दलित साहित्य

२.४ दलित साहित्य के निर्धारक तत्व

२.४.१ वेदना

२.४.२ शोषण

२.४.३ नकार

२.४.४ संघर्ष

२.४.५ विद्रोह

२.४.६ सामाजिक परिवेश और परिवर्तन

२.४.७ स्वाभिमान

२.३.८ प्रतिबद्धता

२.४.९ मुक्ति संकेत

२.४.१० समाता स्थपित करने का आग्रह

तृतीय अध्याय : ओमप्रकाश वाल्मीकि का कथा साहित्य:दलित जीवन के विविध आयाम पृ. ६८—१५०

३.१ ग्रामीण दलित जीवन

३.१.१ खस्ता हाल जीवन

३.१.२ अज्ञान

३.१.३ भूखमरी

३.१.४ परिश्रम

३.१.५ दयनीयता

३.१.६ अंधविश्वास

३.१.७ छुआ — छूत

३.१.८ उपेक्षा

३.१.९ रूढि — परंपरा — उत्सव

३.१.१० व्यवनांधता

३.१.११ लाचारी

३.१.१२ जातिभेद

३.१.१३ उच्च वर्ग की ज्यादतियॉ

३.१.१४ व्यवस्थागत अन्याय

३.१.१५ षडयंत्र

३.१.१६ शोषण

३.१.१७ जाति—भीतर—जाति

३.१.१८ शिक्षा संघर्ष

३.१.१९ एहसान फरामोशी

३.१.२० चेतनायुक्त नई पीढी

३.१.२१ विरोध का नजरियॉ

३.१.२२ सहदयता

३.२ नगरीय जीवन

३.२.१. आर्थिक तंगी

३.२.२. रोजगार की समस्या

३.२.३. शिक्षा संघर्ष

३.२.४. विस्थापन

३.२.५. निवास की समस्या

३.२.६. छुआ—छूत

३.२.७ विभेद नीति

३.२.८. शोषण

३.२.९. कार्यालयीन षडयंत्र

३.२.१०. पूर्वाग्रह

३.२.११. हिनताबोध

३.२.१२. सवर्ण समाज के प्रति अविश्वास

३.२.१३. सुधार का दिखावा

३.२.१४. योग्यता को नकारने का षडयं

३.२.१५. आरक्षण विरोध

३.२.१६. आत्मकेंद्रित दलित वर्ग

३.२.१७. प्रतिशोध/विरोध

३.२.१८. स्वाभिमान

३.३ स्त्री जीवन

३.३.१. सवर्ण स्त्री

३.३.१.१. यौन शोषण

३.३.१.२. पारिवारिक स्थिति

३.३.१.३. जातिभेद

३.३.१.४. उपेक्षाभाव

३.३.१.५. अपने खोल में सिमटी

३.३.१.६. छुआ—छूत

३.३.१.७. चेतना

३.३.२. दलित स्त्री

३.३.२.१. यौन शोषण

३.३.२.२. पारिवारिक स्थिति

३.३.२.३ विरोध

३.३.२.४. श्रम भागीदारी

३.३.२.५. दयनीयता

३.३.२.६. परिवर्तन आग्रही

३.३.२.७. चेतना

उपसंहार **पृ.१५१—१५९**

परिशिष्ट **पृ.१६०—१६४**

प्रथम अध्याय

ओमप्रकाश वाल्मीकि : जीवन परिचय

जीवन परिचय से अभिप्राय उन समस्त घटनाओं से हैं, जो किसी व्यक्ती का निश्चित व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं । ये घटनाएँ सुखद – दुखद दोनों प्रकार की हो सकती है । किसी व्यक्ति के जीवन में घटित घटनाएँ पाठक के लिए विशेष, सबक लेने लायक, होने के साथ ही उन घटनाओं का उस व्यक्ति के लिए विशेष होना भी उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना पाठकों के लिए होना जरूरी है अर्थात् उन घटनाओं के सामाजिक मूल्य के साथ ही व्यक्ति मूल्य भी एहमीयत रखते हैं ।

यहाँ घटनाओं की विशेषता के साथ ही उनकी प्रमाणिकता भी महत्वपूर्ण है । कभी – कभार लेखक भी आत्मस्तुति या पठनीयता, रोचकता का शिकार बनता है और प्रामाणिकता के बजाय कल्पना या झूठ का सहारा लेता है, जो साहित्यक नीति के विरूद्ध है । हर व्यक्ति अपने समाज, परिवेश, प्रकृति और संस्कारों की उपज होता है । यह घटक उसके जीवन, आचार–विचार, रहन–सहन, प्रतीभा, कल्पना आदी को गहराई तक प्रभावित करते हैं । ऐसा व्यक्ति कोई रंगकर्मी, चित्रकार, अभिनेता, शील्पकार, लेखक कवि हो तो उसकी विभिन्न जीवनानुभूतियाँ, उसकी सर्जना द्वारा अभिव्यक्त होती है । ये जीवनानुभव विशि ट, व्यक्तिगत होते हुए भी पाठक, श्रोता, दर्शक, जनसामान्य को उद्वेलित और प्रेरित करने की क्षमता रखते हैं । पाठक इन अनुभवों से रू– ब –रू हो, उनकी उचित – अनुचितता को परख, उन स्थितियों की व्याख्या कर, अपना जीवन जीते समय, उनसे सहायता लेता चलता है । इसीलिए विशिष्ट व्यक्तियों का जीवन परिचय अपने – आप में विशि ट होने के साथ ही व्यक्ति, समाज, रा ट्र का उन्नायक, दिग्दर्शक एवं प्रेरक होता है ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि हिंदी दलित साहित्य धारा में एक चर्चित नाम है । अपने साहित्य के माध्यम से जनमानस में उन्होंने अपनी अलग

पहचान बनाई है । उन्होंने स्वयं दलित जीवन की व्यथा एवं पीडा के दंश सहे है ।उनका साहित्य भूक्तभोगी व्यथा की प्रामाणिक अभिव्यक्ति है । उन्होंने अपनी संवेदनात्मक प्रक्रियाएँ एवं अनुभूतियों को साहित्य में इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि उनकी वैयक्तिकता का परिबोधन सामाजिक स्तर पर स्वीकृति योग्य बन जाएँ ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी कहानियों में दलित जीवन की उपेक्षाएँ, प्रताडनाएँ, त्रासदी, विवंचना, उनका सुख – दुख, कष्ट – क्लेश, घूटन तथा उसके निवारण के लिए किया जानेवाला संघर्ष आदि को गहरी संवेदना के साथ वाणी देते हैं । साहित्य लेखक के जीवनानुभवों से जन्म लेता है । अंत: किसी लेखक के साहित्य को समझने के लिए उसके धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश को तथा उक्त प्रदेश के समाज मनोविज्ञान को समझना जरूरी है ।साहित्य इन्ही स्थितियों की उपज होता है । इन स्थितियों को जानने के लिए लेखक के जीवन परिचय से मुखातिब होना आवश्यक है । अत: उनके जीवन– परिचय को सुविधा के लिए निम्न तीन उपविभागों में देखना उचित होगा –

१.१ जीवनवृत्त

१.२ व्यक्तित्व

१.३ कृतित्व

१.१ जीवनवृत्त

जीवनवृत्त से अभिप्राय जीवन की समसत गतिविधियों से हैं,जिनसे एक व्यक्ति का व्यक्तित्व निर्माण होता है । जीवन वृत्त संक्षेप में किसी व्यक्ति की कहानी होती है, जो सुखद–दुखद, प्रभावात्मक से अधिक

प्रामाणिक होनी चाहिए । इस उपविभाग में ओमप्रकाश वाल्मीकि के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएँ, चढाव–उतार संक्षेप में रखने का प्रयास किया गया है । इसमें उनके जन्म से लेकर मृत्यु तक का जीवन पट दिया है । जीवनवृत्त में उनका संघर्ष, जीने की जद्दोजहद, उनकी प्रेरणाएँ तथा वे जिस मुकाम पर पहुँचे, वहाँ तक आने के लिए उन्हें जिन स्थितियों से गुजरना पडा, उन स्थितियों को उजागर करने का प्रयास किया गया है ।

१.१.१ जन्मतिथि एवं जन्मस्थान

ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी आत्मकथा ' जूठन ' में लिखते हैं – '' बचपन जिस परिवेश में बिता वहाँ जन्मतिथि को संभाल रखना संभव नहीं था । जिस समय पिताजी स्कूल लेकर गए और दाखिले पर मास्टर जी ने लिखा वहीं जन्मतिथि बन गई । ''[१] स्कूल के रेकॉर्ड के अनुसार ३०जून, १९५० ओमप्रकाश वाल्मीकि की जन्मतिथि है ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्मस्थान उनका मूल गाँव अर्थात् उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर में स्थित ' बरला ' नामक छोटा गाँव है, जिसे तगाओं के गांव के रूप में भी जाना जाता है ।

१.१.२परिवार जन

ओमप्रकाश वाल्मीकि के परिवार में माता – पिता , पाँच भाई ,एक बहन,दो चाचा और एक ताऊ आदि परिवार सदस्य है । परिवार गाँव के त्यागियों के घर साफ – सफाई , खेती – बाडी तथा मजदूरी कर जीवन यापन करता है । इन कामों के बदले उन्हें मेहनताना कम प्रताडनाएँ, उपेक्षाएँ एवं अपमान ही अधिक मिलता था । ओमप्रकाशक की माता का नाम मुकुंदी था लेकिन लोग उन्हें ' खजुरीवाली ' के नाम से ही जानते थे।

वे सहारनपुर जिले में हिडन नदी के किनारे स्थित खजुरी नामक गाँव की रहनेवाली थी, इसी कारण उनका नाम खजूरीवाली पडा था ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के पिताजी का नाम छोटनलाल था । वे साहसी और जिंदादिल इंसान थे और उतने ही परिस्थिति के हाथों लाचार। वे स्वयं अनपढ थे । पढाई या पाठशाला से उनका दूर – दूर तक कोई वास्ता न था । इसके बावजूद उन्होंने ओमप्रकाश को पढाने में कोई कसर नहीं छोडी । उन्हें आशा थी कि बेटा पढेगा तो हमारी जाति सुधरेगी। शिक्षा से वे यहीं अपेक्षा करते हैं ।

ओमप्रकाश के चार भाई और दो बहने थी किंतु बडी बहन सोमती की दो वर्ष की आयु में ही मृत्यु हुई । छोटी बहन माया का विवाह कर दिया गया । बडे भाई सुखबीर जिसके कारण परिवार के हालात सुधर रहे थे, बीमारी का शिकार हो गया । उसकी विधवा रहतादेवी का विवाह भाई जसवीर से कराया गया । जगदीश अठरा साल की आयु में गुजरा । संक्षेप में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का परिवार या कुल परंपरा निम्न प्रकार

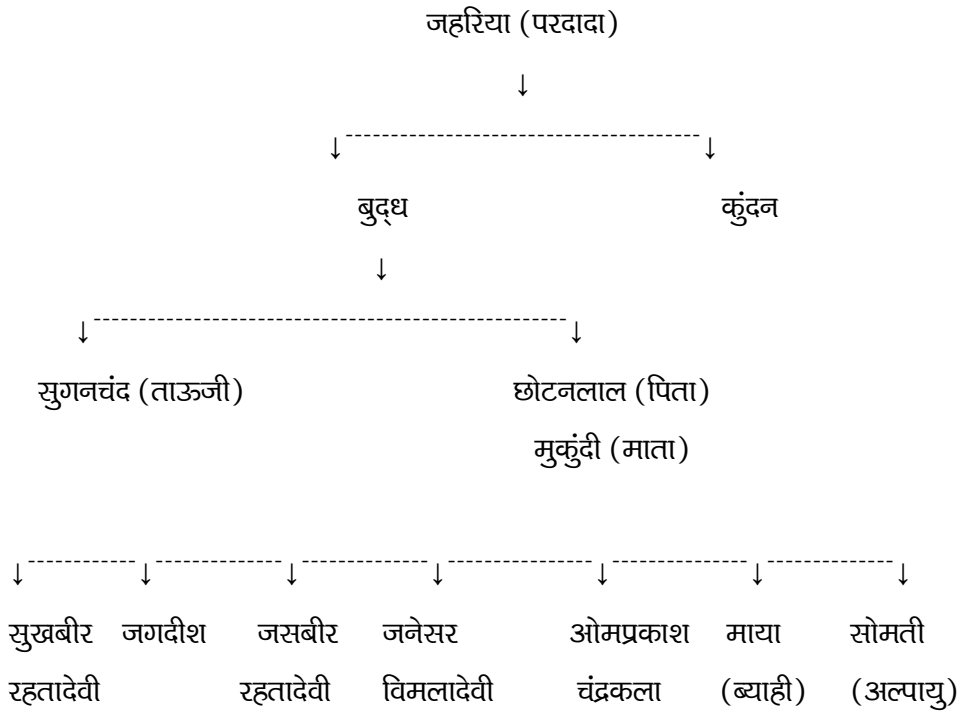

१.१.३बचपन

बचपन अभवों और जातिगत विद्वेष के जहरिले दंश सहते हुए बिता । प्रश्न तो यह है कि दलितों के बच्चों का भी कोई बचपन होता है । वे बचपन में प्रौढ और प्रौढावस्था में ही बूढे हो जाते हैं । भूख और खस्ताहाल स्थिति उन्हें विभिन्न काम करने के लिए मजबूर कर देती हैं । ओमप्रकाश को बचपन से ही सुअरों की देखभाल करना, भैंस के लिए चारा लाना, तगाओं की बेगारी करना आदि काम करने पडे ।

उनका बचपन जिस परिवेश में बिता ,उस परिवेश के बारे में वे लिखते हैं — '' चारों तरफ गंदगी भरी होती थी । ऐसी दुर्गंध कि मिनट भर में साँस घुट जाए । तंग गलियों में घुमते सुअर, नंग — धडंग बच्चे, कुत्ते, रोजमर्रा के झगडे, बस यह था वातावरण जिसमें बचपन बिता । ''[२] उनके घर के पीछे की खुली जगह में गाँव भर की औरते टट्टी — फरागत के लिए खुले में बैठती थी ।बरसाती दिनों में मक्खी — मच्छारों तथा कीचड के कारण इस परिवेश में जिना किसी नरक में जिने से कम न था । अध्यापकों की मार, सहपाठियों की दुत्कार, त्यागियों की ज्यादतियॉ, घर के अभाव, भुख, अंद्धश्रदधा, अज्ञान, शोषण, उॅच—नीचता की दलदल, आत्मविश्वास को तोडने की साजिशे यहीं है ओमप्रकाश वाल्मीकि का बचपन ।

ऐसे परिवेश में कुछ अच्छा था तो यह कि वे परिवार में सबसे छोटे थे ।छोटा होने के कारण उन्हें माता — पिता, भाई — भौजाइयों से खुब प्यार मिला । इसी कारण उन्हें शिक्षा की सुविधा प्राप्त हुई । छोटे होने के कारण उनके हिस्से काम भी कम आता था।

शिक्षा क्षेत्र में उनका आना किसी हादसे से कम न था । पिताजी की प्रबल इच्छा और ओमप्रकाश की ज्ञान लालसा यहाँ प्रमुख है ।

वरना इस परिवेश में उन्हें जिल्लत के सिवा कुछ न मिला । बचपन अभावों और यातनापूर्ण स्थितियों से ओत —प्रोत होने के बावजूद ओमप्रकाश इन्हीं स्थितियों से जीवन रस बटोरते हुए अपना विशिष्ट व्यक्त्वि निर्माण करते हैं ।

१.१.४ शिक्षा — दीक्षा

ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म 'चूहडा ' जाति अर्थात दलितों में भी अत्यंत निम्न और हीन समझी जानेवाली जाति के परिवार में होने के कारण शिक्षा प्राप्ति में उन्हें कई समस्याओं का सामना करना पडा । उनके मोहल्ले में सेवक राम मसीही नामक व्यक्ति थे, जो चूहडों के बच्चों को पढाया करते थे । राम मसीही के बिना टाट — चटाई, बिना कमरे वाले,खुले स्कूल में ही ओमप्रकाश की शिक्षा का प्रारंभ हुआ ।कुछ ही दिनों बाद पिताजी छोटनलाल और राम मसीही की नोक — झोंक के कारण उनकी पढाई रूक गई ।

बेसिक प्रायमरी स्कूल में लेखक को दाखिला दिलाने के लिए पिताजी को स्कूल के कई चक्कर काटने पडे थे । मास्टरजी हरफुल सिंह स्कूल में दाखिला नहीं दे रहे थे । उनका कहना था 'चूहडे' का पढकर क्या करेगा ? पिताजी के काफी गीडगीडाने पर ओमप्रकाश को स्कूल में दाखिला तो मिला लेकिन पढने के लिए नहीं झाडू मारने के लिए । हेडमास्टर कालीराम हर रोज ओमप्रकाश को बुलाकर स्कूल का मैदान और बरामदे साफ कराते । मना करने पर धमकाया जाता । ओमप्रकाश के ज्ञानार्जन की शुरूआत हेतु पिताजी को गांव के मुखिया की मदद लेनी पडी थी । उसी स्कूल में गॉव के त्यागियों के बच्चे पढते थे, जो उन्हें ' चूहडे का ' कहकर चिढते थे । स्कूल में उन्हे सबसे पीछे बिठाया जाता । उन्हें प्यास लगने पर पास ही हैडपंप होने के बावजूद किसी सवर्ण का इंतजार

करना पडता था । हैडपंप को छूने पर बच्चे पीटते थे और शिक्षक भी प्रताडित करते थे । स्कूल के हेडमास्टर उन्हें पढाने से अधिक उनसे स्कूल के कमरे, बरमिद और मैदान में झाडू लगवाना पसंद करते थें । साथ में मॉ — बहन की गालियॉ भी देते थे ।

अपने भाभी का पाबेज बेचकर उन्होंने बरला इंटर कॉलेज, बरला में दाखिला लिया— '' इसे बेच के लल्ला जी का दाखिला करा दो।''[३] अभावों और आर्थिक विवंचना को झेलते हुए वे ग्यारहवीं की परीक्षा अच्छे अंकों से पास हुए । बारहवी (सायन्स) यह उनका सबसे महत्वपूर्ण शैक्षिक वर्ष था, जिसके परिणाम पर ही भविष्य आकार लेने वाला था । मास्टर बृजपाल सिंह उन्हें प्रॅक्टिकल नहीं करने देते थे । वे प्रॅक्टिकल के समय उन्हें जान—बूझकर किसी अन्य काम में लगा देते । परिणामत: प्रॅक्टिकल में उनकी हाजरी कम होने के कारण उन्हे फेल कर दिया गया । बृजपाल जैसे कई अध्यापकों का सामना लेखक को करना पडा जो मात्र जाति के कारण उन्हें प्रतडित करते रहें । ऐसे अध्यापकों के संदर्भ में रजनी तिलक लिखती है — '' भारतीय शिक्षा व्यवस्था के जनक शिक्षकों के मन पटल से ही जाति का संस्कार नहीं निकल सका तो वे छात्रों को कैसे समानता की शिक्षा दे सकेंगे । ''[४]

बारहवीं फेल होने के बाद उन्होंने डी.ए.वी. इंटर कॉलेज, देहादून में दाखिला लिया । यहॉ भी उन्हें जाति हीनता और आर्थिक तंगहाली को सहना पडा । देहारादून की रायुर ऑर्डीनेंस फॅक्टरी में अप्रेंटिस के तौर वह उन्हें काम मिला जिससे शिक्षा और स्कूल छुट गया । इस दौरान उन्हें आर्डिनैस फॅक्टरी चंद्रपुर, (महाराष्ट्र) में एक डिजाईनर के तौर पर नौकरी मिली । चंद्रपुर से देहरादून तबादला होने पर तकरीबन १३ साल बाद उन्होंने अपनी अधूरी शिक्षा आरंभ की । व्यक्तिगत परीक्षार्थी के रूप में

१९९२ में उन्होंने हेमवती नंदन बहुगुण गढवाल, श्रीनगर वि.वि. से एम.ए. (हिंदी साहित्य) पास किया ।

इस प्रकार अध्यापकों के मार—पीट, साजिशों, सहपाठियों की लानते, गालियॉ तथा इस प्रकार की कई समस्याओं का सामना करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि उम्र के पॉचवे दशक में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण कर अपनी शिक्षा—लालसा की पूर्ति करते हैं ।

१.१.५ प्रेरणा एवं प्रभाव

ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्यकार के रूप में सुप्रष्ठित है । दलित साहित्य डॉ. आंबेडकर की विचारधारा से प्रभावित है । वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि डॉ. आंबेडकर के विचारों और जीवन से वे गहरे तक प्रभावित रहे ।

प्रेरणा और प्रभाव के रूप में प्रमुखत: उनका परिवेश और माता — पिता ही मेरे सामने आ जाते हैं । घर और गॉव के परिवेश में उन पर जो ज्यादतियॉ की गई, उसी से शक्ति संपादित करते हुए वे अपनी अदम्य जिजीविषा को जिलाए रखते हैं । साथ ही माता मुकुंदी और पिता छोटनलाल के स्वभाव, व्यवहार और कर्मठता उन्हें हरदम आगे बढने के लिए प्रेरित करती रहीं ।

अपने गॉव तथा देहादून इंटर कॉलेज में आने से पहले उन्होंने कभी डॉ. आंबेडकर का नाम तक नहीं सुना था । इंद्रेशनगर के पुस्तकालय से मित्र हेमलाल ने— '' डॉ. आंबेडकर : जीवन परिचय '' लेखक चंद्रिका प्रसाद 'जिज्ञासा' की किताब ओमप्रकाश पढने दी । इस प्रकार पहली बार उनका डॉ. आंबेडकर से परिचय हुआ था । डॉ. आंबेडकर के जीवन संघर्ष और विचारधारा ने उन्हें गहरे प्रभावित किया । उसके बाद उन्होंने डॉ. आंबेडकर को अधिक से अधिक पढा, जाना, समझा । डॉ. आंबेडकर के

विचार उनके लिए अज्ञान और अंधग्रदधा के अंधियारे को मिटाने के शस्त्र—अस्त्र थे । उनके भीतर की घुटन, बेचैनी, बेबसी, लाचारी, हीनता को तोडने का काम डॉ. आंबेडकर के विचारों ने किया । यह उसी शक्स की शक्सियत का कमला है जो ओमप्रकाश वाल्मीकि की प्रवाहमयी चेतना जागृत हो, साहित्य के रूप में प्रवाहित होती रही है । उनके व्यक्तित्व को सही रूप में दिशा देने का काम, तराशने का काम डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों एवं जीवन संघर्ष ने किया ।

१.१.६ नौकरी — उपजीविका

रायपुर के बम फॅक्टरी में हायस्कूल पास लडकों की भर्ती चल रही थी । लेखक ने भी अपना नाम डाक से भेज दिया । तब वे बारहवीं कक्षा में पढ रहे थे । लिखित परीक्षा में पास होने पर अप्रैंटिस के लिए आर्डिनैस फैक्टरी, देहारादून में प्रवेश मिला । कुछ दिनों बाद अंबरनाथ (मुंबई) ड्राफटमन के लिए आवश्यक परीक्षा दी । पास होने के बाद वे मुंबई चले गए । मुंबई में ढाई साल के प्रशिक्षण के उपरांत ही आर्डिनैंस फैक्टरी, चंद्रपुर में नियुक्ति हुई । इस प्रकार आजीविका के तलाश में उन्हें कई जगहों पर स्थलांतरित होना पडा । नौकरी के चयन के संदर्भ में वे कहते हैं — '' क्या जीवन का क्षेत्र चुनने की छूट भारत में दलितों को है ? क्षेत्र से ज्यादा जीविका चलाने के लिए जो भी नौकरी सामने आई कर ली । कोई अफसोस नहीं है । जीवन और समाज की यही वास्तविकता है । ''[५] जो काम मिला उसे वे अपनाते चले गए । अपनी इमानदारी, लगन और कार्यक्षमता के बलबुते पर वे कामयाबी की एक—से—एक बुलंदियॉ छुते चले गए । ओमप्रकाश वाल्मीकि भारत सरकार के रक्षा मंत्रालय के उत्पाद विभाग के अधीन ऑर्डीनैंस फॅक्टरीज की ओप्टो

इलैक्ट्रॉनिक्स फैक्टरी से वरिष्ठ अधिकारी की हैसियत से अवकाश प्राप्त करते हैं ।

१.१.७ विवाह

ओमप्रकाश वाल्मीकि के पत्नी का नाम ' चंद्रकला ' है उनका विवाह २७ दिसंबर, १९७३ में हुआ । चंद्रकला ओमप्रकाश की भाभी स्वर्णलता की छोटी बहन है । जब वे इंटर में पढ रही थी तभी ओमप्रकाश ने उनसे शादी की बात की थी । उनके 'हाँ ' के बाद दोनों का विवाह संपन्न हुआ । इसके लिए ओमप्रकाश को घरवालों का विरोध भी सहना पडा । परिवार के सदस्य उनके लिए जिस तरह की लकडियाँ ढूँढ रहे थे उससे वे सहमत नहीं थे । उनका विवाह हिंदू पद्धती से हुआ । उनके ससुराल वालों को यहीं इच्हा थी ।

१.१.८. संतान

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कोई संतान नहीं है । लेकिन इस बात का उन्हें जरा भी गम नहीं है । वे कहते हैं — '' मुझ पर प्रेम करनेवाले, मेरे साहित्य को पढनेवाले आप जैसे सारे विद्यार्थी मेरी संतान है । ''[६] उनका पितृ हृदय विशाल मानवता का परिचय देता है । संतान न होने के दुख में डूबे रहने के बजाय वे अपने इस अभाव को पाटने की कोशिश करते हैं ।

१.१.९ मृत्यु

एक सुप्रतिष्ठित दलित लेखक के रूप में अपनी अलग पहचान बना चुके ओमप्रकाश वाल्मीकि का देहांत कॅसर के कारण १७ नवंबर, २०१३ में हुआ ।

१.२ व्यक्तित्व

व्यक्तित्व एक अमूर्त संकल्पना है जो व्यक्ति के समग्र विचार– व्यवहार से प्रकट होती है । व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में जिस प्रकार परिवार, परिवेश एवं समाज का हस्तक्षेप अनिवार्य तथा महत्वपूर्ण माना जाता है, उसी प्रकार व्यक्ति का संस्कार ग्रहण क्षम होना भी महत्वपूर्ण है ।

व्यक्तित्व से अभिप्राय व्यक्तिगत गुणों से है । कोई व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से जिन गुणों के कारण अपनी अलग पहचान रखता है, उन गुणों को उस व्यक्ति का व्यक्तित्व कहा जाता है । इस संकल्पना को स्पष्ट करने के लिए उसके कोशीय अर्थ को जानना अधिक उपयुक्त होगा –

अ) व्यक्तित्व – १) व्यक्ति की विशेषता या गुण (जैसे व्यक्तित्व परिचय)
२) विशेष गुण या असामान्य विशेषताएँ ।[७]

आ) व्यक्तित्व – वे विशेष गुण जिनके द्वारा किसी की स्पष्ट और स्वतंत्र सत्ता सूचित होती है ।[८]

इ) व्यक्तित्व – व्यक्तिका गुण या भाव । वे विशेष गुण जिनके द्वारा किसी व्यक्ति की स्पष्ट और स्वतंत्र सत्ता सूचित होत है । पर्सनैल्टी ।[९]

अत: स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि व्यक्ति की अपनी अलग पहचान बनानेवाले वे गुण जो उसे किसी अन्य व्यक्ति से भिन्न

रूप में प्रकट करने के साथ उसके स्वतंत्र अस्तित्व का बोध कराते हैं — व्यक्तित्व के नाम से अभिहित किए जाते हैं ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के व्यक्तित्व को निम्न बिंदुओं के आधर पर स्पष्ट किया जा सकता है —

१.२.१ जूझारू

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने बचपन से ही अनगिनत समस्याओं का सामना किया है । इन समस्याओं से लडते— झगडते उनका एक जूझारू व्यक्तित्व निर्माण हुआ । पेट की भूख मिटाने के लिए, शिक्षा लालसा पूरी करने के लिए,शादी करते समय, अनिष्ट परंपराओं का विरोध करते हुए उन्हें यातनाओं,संघर्षों से गुजरना पडा । कभी— कभी इन समस्याओं का अतिरेक होने लगता तो वे अंदर से टूटने लगते— '' एक अजीब—सी याातना पूर्ण जिंदगी थी, जिसने मुझे अंतर्मुखी और चिडचिडा तुनक मिजाजी बना दिया था । ''[१०] उनके किसी थी अच्छे — बुरे कार्य को समाज से समर्थन नहीं मिला बल्कि विरोध ही अधिक हुआ ।

जातिगत द्वेष, साजिक उपेक्षा, बहि कार और विवंचना से युक्त ' चूहडा' जाति में पैदा हो, गॉव की छुआ — छूत से बरबर भूमी में इंटर तक पढना, बारहवीं फेल होने के बाद देहरादून से बारहवीं पास करना, अन्य शिक्षा बहिस्थ विद्यार्थी के रूप में ग्रहण करना तथा नौकरी हेतु चंद्रपुर ,मुंबई ,देहरादून का सफर और भारत सरकार के रक्षा विभाग में काम करना, उनके जुझारू व्यक्तित्व का प्रमाण है । अपनों और बाहरवालों के विरोध के बावजूद 'वाल्मीकि' सरनेम को अपने नाम से अलग न करना ओमप्रकाश वाल्मीकी के जूझारू व्यक्तित्व का परिचायक है ।

१.२.२ साहसी एवं सत्यप्रिय

सत्य के प्रति दृढ संकल्प ही उनका साहस है, वे झूठ बोलकर या अपनी जाति छिपाकर मान — सम्मान नहीं पाना चाहते । वे किसी भी सत्य को नजरअंदाज नहीं करते बल्कि दृढता से उसका सामना करते हैं । बचपन से ही अनेक जातीय दंशो के झेलने के बावजूद यदि कोई उनका नाम या जाति पूछे तो वे बेझिझक चूहडा बता देते हैं ।

एक दिन उनके सवर्ण मास्टर बृजपाल सिंह उन्हें गेहु लाने अपने गॉव भेजते हैं । काफी जद्दोजहद के बाद वे और मित्र भिक्खुराम मास्टर जी के घर पहुॅचते हैं । वहॉ उनका अच्छा अतिथि सत्कार होता है। खाना — पीना होने बाद गपशप के दौरान मास्टर जी के पिताजी से गपशप करने आए बुजुर्ग पूछते हैं, '' कोण जात ?'' [११] ओमप्रकाश अपनी सही जाति का उल्लेख करते हैं जिसके कारण उनकी पिटाई होती है और गालियॉ भी खानी पडती हैं । मुंबई में भी सविता कुलकर्णी उन्हें ब्राह्मण समझ उनकी और आकृष्ट होती किंतु उसे भी वे अपनी असलीयत बताते है जिससे कुलकर्णी परिवार के साथ जूडा रिश्ता समाप्त होता है ।

आज उनके सभी लेखक मित्र,रिश्तेदार,यहॉ तक पत्नी भी चाहती है कि अपना नाम 'वाल्मिकि' जो जाति वाचक है, उसे बदल दे । लेकिन ओमप्रकाश इसी नाम को प्रधानता देते हुए 'जो है, उसे स्वीकारने की सलाह देते' हुए अपनी ने सत्यप्रियता और साहस का परिचय देते हैं

१.२.३ बहुभाषी

नौकरी के कारण जिन प्रदेशों से संपर्क आया वहॉ की भाषा तथा शिक्षा के कारण जिन भाषा के सान्निध्य में आए उस भाषा को वे आत्मसात करते चले गए । उत्तर प्रदेश के होने कारण वहॉ की पंजाबी और हरियाणवी भाषा से मेल खाने वाली कौरवी भाषा के वे अच्छे जानकार बने । नौकरी के कारण चंद्रपुर, मुबई गए वहॉ की मराठी भाषा अवगत की । शिक्षा के कारण अंग्रजी भाषा से संपर्क आया, उसे

आत्मसात किया । इन भाषाओं के साथ ही पंजाबी, खडीबोली, बांगला आदि भाषाओं पर उनकी अच्छी पकड है ।

१.२.४ अध्ययनशील

ओमप्रकाश वाल्मीकि को किताबों से बेहद प्यार था, इसी कारण वे स्कूल के मेधावी छात्रों में गीने जाते थे । स्कूली शिक्षा में ही उन्होंने रवींद्रनाथ टैगोर, शरतचंद्र, प्रेमचंद आदि को पढा है । अपनी मॉ को सुनाने के लिए आल्हा, रामायण, महाभारत, सूरसागर, प्रेमसागर, सुखसागर तथा तोता— मैना के किस्से पढे । बचपन में ही वे अपने चाचा की पुराणी मोटी — मोटी किताबे उलट — पुलटकर देखा करते थे । उनकी वाचन लालसा देखकर पिताजी ने ओमप्रकाश को गीता खरीदकर दी थी ।

इंद्रशनगर के पुस्तकालय से 'डॉ. आंबेडकर : जीवन परिचय' किताब पढी जिससे वे काफी प्रभावित हुए थे । ऑर्डिनैंस फैक्टरी ट्रेनिंग संस्थान, अंबरनाथ के छात्रावास के पुस्तकालय से पासतरनाक, हेमिंग्वे, विक्टर हयूगो, पियरे लूई, टॉलस्टाय, दॉस्ताएवस्की, स्टवेशन, आस्कर वाइल्ड, रौम्यॉरोला, एमिल जोला को पढा । यहीं रहते हुए रवींद्रनाथ टैगोर, कालिदास का समग्र साहित्य पढा । मराठी साहित्य से दलित लेखक दया पवार, नामदेव ढसाळ, गंगाधर पाणतावणे, बाबुराव बागुल, केशव मेश्राम, नारायण सुर्वे आदि के साहित्य ने ओमप्रकाश के मन पर गहरा प्रभाव डाला । इस प्रकार वाचन प्रियता अध्ययनशीलता ने उन्हें बहुमुखी व्यक्तिमत्व प्रदान किया ।

१.२.५ नाटक प्रिय : निदेशक एवं अभिनेता

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने चंद्रपुर (महाराष्ट्र) में 'मेघदूत' नामक नाट्यसंस्था की स्थापना की थी । उन्होंने अपनी पत्नी के साथ इस संस्था के माध्यम से कई नाटकों का मंचन किया । आधे — अधूरे, दूलारीबाई, हिमालय की छाया, सिंहासन खाली है आदि नाटकों का उन्होंने सफल मंचन किया । हिमालय की छाया और आधे—अधूरे नाटक के अभिनय के लिए पत्नी चंदा को सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का पुरस्कार भी मिला है ।

स्कूली शिक्षा से ही अभिनय की इच्छा उनके मन में थी । छुताछूत के कारण उन्हें मौका नहीं मिल पाता था और उन्हें दर्शक की भूमिका अदा करनी पडती थी । अंबरनाथ में ट्रेनिंग के दरम्यान जब भी मौका मिलता वे अपने मित्र सूदामा पाटील के साथ नाटक देखने पहुँच जाते थे । यही इन्होंने चोरी — छीपे कई नाटक देखे, जिसमें मराठी का सुप्रसिद्ध नाटक 'नटसम्राट' भी ाामिल है । अपने नाट्य संस्था के माध्यम से उन्होंने अपने अभिनय — निर्देशन के गुणों का विकास किया । उनके अभिनय में काफी प्रगल्भता झलकती है तथा वे कई बार सर्वोत्तम निर्देशक पुरस्कार के हकदार बने ।

मराठी नाटक 'मोरूची मावशी' के हिंदी अनूदित नाटक में मुख्य भूमिका के कारण लोग उन्हें नाम से आधीक भूमिका से पहचानने लगे थे । इकतारे की ऑख, दो चेहरे, अंधी का हाथी, अब्दुल्ला दिवाना, अ स्टडी इन द नेड आदि नाटकों में उन्होंने सफल अभिनय किया । इस प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि नाटक प्रिय व्यक्ति है जो स्वयं निर्देशन और अभिनय का काम भी करते हैं ।

१.२.६ सहयोगी

उपेक्षा और असहयोग से पाला तो बचपन से ही पडा था । इसके बावजूद ओमप्रकाश वाल्मीकि दूसरों की सहायता करने में कभी हिचकिचाते नहीं । स्कूली शिक्षा के दिनों में मास्टर जी द्वारा पानी मॉगने पर वे पानी लाने के लिए खडे तो हो जाते हैं परंतु अपने हाथ का पानी मास्टर जी पीऍगे नहीं, सोचकर ठीठकते हैं । वे अपनी जाति बताते हुए कहते हैं अगर आप चाहते हैं तो मैं पानी ला देता हूँ । मास्टर जी पानी लाने से मना करते हैं ।

मकान मालिक की लडकी कमला को कॉलेज जाने के लिए देर हो जाती है तब ओमप्रकाश अपनी सायकल पर उसे कॉलेज छोड आते हैं । इस कारण उन्हें मामा और भाई से डॉट खानी पडती है ।

गॉव के त्यागियों और धनीमानी लोगों से उन्हें घृणा और उपेक्षा ही मिली । जब वे देहरादून में रहते थे तब उनके गॉव के सवर्ण अपने काम से देहरादून आते, रहने की कोई व्यवस्था न होने पर ओमप्रकाश जी केघर आते हैं तब ओमप्रकाश अतिथि का पूरा आदर–सत्कार करना अपना कर्तव्य समझते हैं(सुखदेव सिंह त्यागी का पोता सुरेंद्र) । उनके रहने – खाने – पीने और अन्य व्यवस्था का खयाल करते हुए अपनी सहयोगी वृत्ति का परिचय देते हैं ।

१.२.७ रूढि, परंपरा एवं अंधश्रद्धा विरोधी

ओमप्रकाश जिस समाज और परिवेश से है । वहॉ के लोग अज्ञानी और अंधश्रद्धालु हैं । पढाई से नाता जुडने के कारण ही ओमप्रकाश का व्यक्तित्व इनसे अलग बन पाया और वे रूढि – परंपरा और अंधश्रद्धा के विरोधी बन पाये । उनके यहॉ हर समस्या का समाधान गंडा – तावीज या पशुबलि माना जाता था ।

एक बार वे बीमार थे, दवा — दारू चल रही थी । उसी समय उनके यहॉ एक रिश्तेदार आए जो भगत थे । उन्होंने कहा कि इसे तो ओवरा (भूत की लपेट) है । थोडी देर वह जमीन पर बैठा और अचानक हिलने लगा और भूत उतार के लिये ओमप्रकाश को पीटने लगे । वे पहले से कमजोर थे और बीमारी से अधिक ही अशक्त हुए थे । भगत के मार से आहत हो वे चिल्लाने लगे — '' इसे रोको, मुझे जान से मार डालेगा यह, मुझे भूत — वूत कुछ नहीं चिपटा है। ''[१२] उनके चिल्लाने से भगत शांत हुआ और चला गया । इस घटना के संदर्भ में ओमप्रकाश कहते हैं — '' मेरा विश्वास और पुख्ता हो गया था कि यह सब ढोंग—बाजी है, जहॉ आस्था के सामने कोई तर्क मायने नहीं रखता था । न जाने कितने लोग इन भगतों ने मार डाले । '' [१३]

वे अपने मित्र हिरम सिंह की शादी में गए थे, जहॉ उन्हें 'सलाम' के लिए सवर्णो के दरवाजों पर जाना पडा था । इसमें सबसे आगे ढोलवाला, उसके पीछे लडकियॉ, औरतें, बच्चे और इन सबके पीछे दूल्हा या दूल्हन । अनजाने गॉव के बेगाने लोगों के दहलिज पर सलाम (माथा नवाने) के लिए घुमना पडता था । वे इस प्रथा का विरोध करते हैं । पर मित्र हिरम में इतना साहस नहीं है कि इस प्रथा का विरोध कर सके । सलाम के बारे में ओमप्रकाश का मानना है,'' सदियों से चली आ रही इस प्रथा के पार्श्व में जातीय अहम की पराकाष्ठा है । समाज में जो गहरी खाई है, उसे प्रथा और गहरा बनाती है । एक साजिश है हीनता के भॅवर में फॅसा देने की । ''[१४] सलाम की प्रथा को तोडने में वे हिरम के शादी में तो सफल ना हो सके लेकिन अपने भाई जनेसर के शादी में उसे सलाम के लिए न भेज कर उन्होंने इस प्रथा का विरोध किया ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के समाज में शादी — ब्याह के मौके पर सुअर की बलि चढाने की प्रथा है । खुद अपनी शादी में सुअर की

बलि न चढाकर उन्होंने 'बलि प्रथा' का विरोध किया । इस प्रकार वे समाज में प्रचलित ढोंग एवं गलत धारणाओं का खुलकर विरोध करते हैं ।

१.२.८ कथा—कथन

यह गुण ओमप्रकाश वाल्मीकी ने अपनी मॉ से अर्जित किया है । बचपन में उन्हें मॉ धारावाहिक रूप में अनेक प्रकार की कहानियॉ सुनाया करती थीं । मॉ का कथा कथन का अपना एक ढंग था जिससे ओमप्रकाश काफी प्रभावित थे । मॉ की इस तकनीक को अपनाते हुए वे भी कथा — कथन करने लगे । मॉ को सूनाने के लिए वे धार्मिक ग्रंथों का वाचन करते थे जिसका लाभ भी उन्हें कथोपकथन में हुआ । इस संबंध में वे कहते हैं — '' मेरे सहयोगी मित्रों समवेत राजेंद्र यादव और मैत्रेयी पुष्पा जी हमारे कथा — कथन में सम्मिलित होकर दलित बस्ती में जमीन पर मिट्टी में बैठते थे । ''[१५] इसी का लाभ उन्हें आगे चलकर नाटकों में अभिनय करते समय कविता पाठ करते समय हुआ ।

१.२.९ ज्ञान — लालसा

ओमप्रकाश वाल्मीकि के ज्ञानार्जन की शुरूआत सेवक राम मसीही के बिना टाट— चटाई तथा बिना कमरे वाले स्कूल से होती है । स्कूल, कालेज में उन्हें ज्ञान से अधिक सहपाठियों से घृणा, तिरस्कार और मास्टरों से मार एवं गालियॉ ही मिली । इसके बावजूद ओमप्रकाश शिक्षा के प्रति की अपनत्व की भावना नहीं छोडते । तमाम क टों, यातनाओं, प्रताडनाओं और व्यस्तताओं के बीच वे अपनी ज्ञान लालसा की पूर्ति करने की भरसक कोशिश करते हैं ।

इंद्रेशनगर हो या अंबरनाथ के छात्रावास का पुस्तकालय, वे अपनी ज्ञान लालसा से वहॉ खींचे चले जाते है । कवित पाठ, संम्मेलनों

या अन्य कामों से कहीं चले जाते तो उनका प्रयास रहता कि वहॉ के विद्वतजनों से मिले, जिससे भी, जो भी ज्ञान मिलता वे ग्रहण करते, भदंत आनंद से बातचित, गंगाधर पावताणे जी से मुलाकत इसी के प्रमाण है । नौकरी के दौरान कई स्थलों पर काम करने के बाद जब वे देहारादून वापस आते हैं तब १३ साल बाद अपनी अधूरी शिक्षा पूरी करते है । उनकी यही ज्ञान – लालसा उन्हें बहुभाषी और बहुज्ञानी बनाती है ।

१.२.१० कर्मशील व्यक्ति

' कमाओ तब खाओ ' घर की इस खस्ताहाल स्थिति ने ओमप्रकाश से कई काम करवाएँ । स्कूली शिक्षा के समय उन्हें स्कूल से आते ही घास लाना, भैस चराने ले जाना, सुअरों की देखभाल करना आदि काम करने पडते थे । इस काम करने की आदत ने उन्हें एक कर्मठ व्यक्ति बनाया । किसी भी प्रकार का काम हो वे पूरे मनोयोग और उत्साह से करते हैं, बशर्ते काम उचित हो । कई बार उन्हें अपने मन – मरजी के खिलाफ भी काम करना पडा । जैसे चाचा के साथ मरे जानवरों की खाल निकालने जाना, फौजासिंह के खेत पर बेगार के लिए जाना आदि । वे अपने अध्यापकों के भी छोटे – मोटे काम करते तथा बस्ती के बच्चों को भी पढाते थे ।

देहादून जाने के बाद विभिन्न सामाजिक और शैक्षिक गतिविधियों में वे सक्रिय सहभागी रहे । पैसों के तंगी के कारण उन्हें देहरादून, परेल नगर में भाई के साथ लकडी चढाने – उतारने के लिए जाना पडता था । इंद्रेशनगर में ' ट्युशन ' लेना तथा शाम को स्कूल चलाना भी पडता था । आर्डिनैंस फैक्टरी में प्रशिक्षण काल में वे सुबह सात से शाम साडे पॉच बचे तक काम करते थें ।

' मेघदूत ' नामक अपनी नाट्यसंस्था में अभिनेता, निर्देशक तथा रंगकर्मी के रूप में उन्होंने काम किया । नौकरी, पारिवारिक व्यस्तताओं के बावजूद वे कई सामाजिक, साहित्यिक संस्थाओं के साथ न केवल सक्रियता से जुडे है बल्कि इसमें महती भूमिका भी अदा कर रहे हैं । ज्ञानदान के कार्य से भी वे जूडे हैं, जिसके चलते बडे पैमाने पर देश भ्रमण करना पडा । साथ ही एक प्रतिभा संपन्न लेखक तथा सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिकाओं का सफल निर्वाह करते हुए अपने कर्मशील व्यक्तित्व का परिचय देते रहे ।

१.२.११ स्वाभिमानी

स्वाभिमान की रक्षा करना ओमप्रकाश को माता – पिता से विरासत से मिला है । मॉ हाड तोड मेहनत के बाद भी उचित मुआवजा न मिलने पर सुखदेव सिंह के बेटी के शादी की जूठन को वहीं बिखेर दिया था । इसलिए अभावों की स्थिति और उपेक्षापूर्ण जिंदगी, आत्मविशास तोडने की साजिशे भी ओमप्रकाश के सवाभिमान को डगा न सके । उनके आत्मकथा में कही ऐसा प्रसंग नहीं आया, जहॉ उन्हें किसी के सामने हाथ फैलाना पडा हो या शारमिंदगी महसूस करनी पडी हो । भले ही भूखे रहे पर किसी के यहॉ भीख मॉगने नहीं गए । मामा के द्वारा मॉगकर लाया गया भोजन वे खाने से मना करते हैं । उन्होंने मान – सम्मान, संपत्ति या किसी भी प्रकार के लालच के खातीर अपने स्वाभिमान को ठेस पहुॅचेन नहीं दी ।

बोर्ड की परीक्षाओं के समय फौजा सिंह त्यागी ओमप्रकाश को जबरदस्ती बेगार के लिए ले जाता है । दोपहर खाने के समय फौजासिंह उन्हें खाना खाने बुलाते हुए कहता है – '' अबे चूहडे के ... आजा .... दो अच्छर क्या पढ लिया, सोहरे का दिमाग चढ गिया है...

अबे, औकात मत भूल .....'' [१६] तब वे खाना खाने नहीं आते । त्यागी की मॉ प्यार से बुलाती हैं तो वे आ जाते हैं । त्यागी की मॉ ओमप्रकाश के हाथ पर रोटियॉ बहुत उपर से छोडती है, जो उन्हें अपमान जनक लगता है । रोटियॉ वही फेंक वे भाग जाते है । ' सलाम ' प्रथा के विरोध में भी उनकी इसी स्वाभिमानी वृत्ति से परिचय होता है । अंबरनाथ में सविता कुलकर्णी के परिवार से मिला अपनापन या अध्यापक बृजपाल सिंह त्यागी के घर मिला मान – सम्मान वे स्वाभिमान के चलते ठुकरा देते हैं और अपनी असली पहचाल नहीं छिपाते ।

१.२.१२ संवेदनशील

चंद्रपुर में जब ओमप्रकाश नौकरी कर रहे थे तब मॉ की तबीयत बिघडने लगी थी । वे मॉ को देखने गांव आए । मॉ की तबीयत देख जब वे वापस गए, उसके एक सप्ताह के बाद माताजी का देहांत हुआ। यह खबर उन्हें मौत के एक सप्ताह बाद मिली । वे अंतिम बार अपनी मॉ का मुॅह तक न देख सके और न ही अंत्ययात्रा में शरीक हो सके । यह पीडा उनके भावूक हृदय को अंत तक कचोटती है ।

पत्नी के देहांत से उनके पिताजी विचलित हुए और वे बीमार रहने लगे। ओमप्रकाश को डर था कि पिता भी न चल बसे ।पिताजी को मिलकर जिस दिन वे वापस चंद्रपुर लौट रहे थे, उसी दिन पिताजी का देहांत हुआ । उस समय वे ट्रेन में थे । यह खबर भी उन्हें समय पर नहीं मिली । माता – पिता ने उन्हें उभारने के लिए अनंत यातनाऍ सही और वे उनके अंतिम दिनों में एक पुत्र का कर्तव्य निभा न सके । यह दुख हमेशा उनके मन में ूल सा चूभता है – '' मॉ और पिताजी को कंधा देने का अवसर मुझे नहीं मिला था । जिसे बनाने में वे संघ ि करते रहे वहीं

उनसे इतना दूर हो गया था । एक ऐसा दुख जिसे मैं अपने मन के तहखानों में छिपाकर बैठा हुॅ । ''[१७]

ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित छात्रों को पढाकर, उनकी सहायता कर, झूग्गी–झोपडियों में जा, उनकी समस्याओं को जानने–सुलझाने का प्रयास करते रहे हैं । चंद्रपुर (महाराष्ट्र) में रहते समय अपने पुलिस मित्र कुरेशी की सहायता से उन्होंने एक अनजान, असहाय लडके की मदद कर, उसकी चार महीने की तनख्वाह दिलाई थी । यहॉ तक कि जिन सवर्णों ने उन्हें सताया, प्रताडित किया; नीचा दिखाने की कोशिश की, उनके सगे – संबंधियों की भी मदद कर अपने संवेदनशील मन का परिचय देते हैं ।

१.२.१३ प्रतिभावान लेखक एवं कवि

ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने सशक्त रचनाकर्म के कारण हिंदी साहित्य में अपनी अलग पहचान के हकदार हैं । उन्होंने जो कहानियॉ, कविताएॅ लिखी, वे दलित जीवन के विभिन्न पक्षों को उघाडकर पाठकों के सामने रखती है । राजेंद्र यादव भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि उनकी कथा – कविताएॅ अपनी गहराई, संवेदनशीलता और पठनियता के कारण दलित साहित्य में वरेण्य स्थान की अधिकारी है । उनकी आत्मकथा ' जूठन ' तथा कहानी संग्रह ' सलाम ' तथा ' घूसपैठिए ' साहित्य जगत में चर्चित हैं । उनकी आत्मकथा कई भाषाओं मे अनूदित हुई है । कई विश्वविद्यालयों में उनकी रचनाओं पर अनुसंधान किया जा रहा है । उनकी कविताएॅ पाठक को अंतर्मुख कर, गहरे तक उद्वेलित करती हैं ।

वाल्मीकि जी को पूछा गया कि जिस तरह गैर दलितों ने दलितों पर लिखा है । वैसे आप गैर दलितों पर क्यों नहीं लिखते ? जवाब में वे कहते हैं – '' मैं गैर दलितों पर भी लिखना चाहता हूॅ लेकिन

मेरी नजर से आज आवश्यकता है दलित लेखन की जिसे मैंने प्राथमिकता दी है । जो स्वाभाविक है । ''[१८] इस प्रकार वे अपनी नैतिक जिम्मेदारी को स्वीकारते हुए दलित साहित्य और दलितों के प्रति की अपनी भावनाएँ एव प्रतिबद्धता को व्यक्त करते हैं ।

१.३ कृतित्व

कृतित्व से अभिप्राय लेखक कें लेखकीय कर्म से हैं । एक लेखक के रूप में उन्होंने जो लिखा है उसका लेखा – जोखा इस उपविभाग में प्रस्तुत है । जहॉ तक मेरी जानकारी हैं ओमप्रकाश वाल्मीकि ने आत्मकथा, कहानी, कविता, आलोचना, अनुवाद आदि विधाओं में अपना मौलिक योगदान दिया है । उसके लिए उन्हें कई पुरस्कारों से सम्मानित भी किया गया है । अत: यहॉ उनके कृतित्व का विवेचन – विश्लेषण प्रस्तुत है ।

१.३.१ आत्मकथा – ' जूठन '

' जूठन ' ओमप्रकाश वाल्मीकि की बहुचर्चित आत्मकथा है । इसमें लेखक ने अपने जीवननुभवों को प्रस्तुत करते हुए समाज में होने वाली अपनी जाति की उपेक्षा को प्रस्तुत कर ऊॅची या सवर्ण कही जाने वाली जाति के दृ टकोण को चित्रित किया है । जिसमें सवर्णो के पशुतुल्य व्यवहार, भद्दी गालियॉ, घृणा, अपमान, मारपीट आदि को समाहित किया है । आत्मकथा में उन्होंने बचपन से लेकर उनके अंतिम दिनों तक की स्थिति का यथास्थिति चित्रण किया है ।

आत्मकथा लिखने का विचार उनके जेहन में पहले से था लेकिन सही दिशा और शुरूवात नहीं हो पा रही थी । कई बार उन्होंने लिखे हुए पन्ने फाड दिए । वे कहते हैं – '' विगत जीवन के अनुभवों में

तमाम क टों, यातनाओं, उपेक्षाओं एवं प्रताडनाओं को एक बार फिर जीना पडा इस दौरान गहरी मानसिक यंत्रणाएँ मैंने भोगी । ''[१९] आत्मकथा लिखना आसान नहीं होता । ये खुद को पतर—दर—परत कपडें उतारते हुए नंगा करने की प्रक्रिया है । एकदम वास्तविक लिखने पर लोग घृणा से देखते हैं तो अच्छा लिखने पर आत्मस्तुति का ठप्पा लग जाता है । इसके बावजूद ओमप्रकाश वाल्मीकि ने उन सभी घटनाओं का समावेश किया है जो भारतीय समाज के आदर्शवाद की धज्जियॉ उडाती हैं ।

' जूठन ' में धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक विषमता और अंधविश्वास की खाई में सिसकता दलित समाज, शिक्षा नीति एवं शिक्षक की मनोवृत्ति, मनु य रूप में अपने आप को स्थापित करने की दलितों की जद्दोजहद व्याप्त है । ' जूठन ' तथा—कथित सवर्ण एवं धर्म के ठेकेदारों की झूठी शानो—शौकत, भारत की आदर्श समाज व्यवस्था, विश्वमानवता का संदेश देनेवाली ढोंगी संस्कृति का कच्चा चिट्ठा है जो उनके मठों में सेंध लगाने का काम करता है ।

' जूठन ' मात्र बिते जीवन का ब्यौरा नहीं है, उसमें पठनीयता, कलात्मकता, भाषिक विविधता, वस्तु वर्णन की सजिवता तथा चरित्र — चित्रण की सहजता है । यह हिंदी आत्मकथाओं में आज सबसे चर्चित आत्मकथा मानी जाती है । पाठक उनकी आत्मकथा को पढते हुए कहीं उत्तेंजित होने लगता है तो कहीं पसीजने लगता है तो कहीं क्रोध से भर उठता है । ' जूठन ' में पठनीयता का अभूतपूर्व गुण है जो पाठक को बरबस अपनी और आकर्षित करता है ।

१.३.२ कहानी संग्रह

१.३.२.१ सलाम

यह उनका पहला बहुचर्चित कहानी संग्रह है जिसका प्रकाशन सन २००० में राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ । इसमें दलित जीवन की विभिन्न समस्याओं, स्थितियों को वाणी देने का काम किया है । इसमें दलितों के संघर्ष, सामाजिक उपेक्षा, अभाव, शोषण, जातीय विषमता एवं दलितों की हीन भावना दृष्टिगोचर होती है । ' सलाम ' संग्रह में कुल १४ कहानियॉ संकलित हैं, जिनमें सलाम, सपना, भय, अम्मा, खानाबदोश, कुचक्र, गोहत्या, ग्रहण, अंधड, जिनावर, कहॉ जाए सतिश ?, पच्चीस चौका डेढ सौ, बैल की खाल, बिरम की बहू आदि कहानियों का अंतर्भाव हैं । ये कहानियॉ विभिन्न सामाजिक समस्याओं, अंधविश्वासों, अन्याय, अमानवियता एवं शोषण के अंगों को उजागर करते हुए पाठक के मन—मस्ति क को झक—झोरती हैं । इन कहानियों मे आक्रोश है, असहायता है, घृणा, तिरस्कार है, बदले की भावना है, अपनी कमियॉ और समाज व्यवस्था की खामियॉ है ।

१.३.२.२ घुसपैठिये

ओमप्रकाश वाल्मीकि के इस कथा संकलन का प्रकाशन सन २००३ में राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ । यह संग्रह पहले संग्रह से अधिक विद्रोही और आक्रमक है । संकलित कहानियों में दलितों के सुख—दुख, व्यवस्था के प्रति गहरा आक्रोश, कथा विन्यास के अनुरूप तर्क और विचार, दलितों की मुखरता एवं संघर्ष ही दृष्टिगोचर होता है । इस संग्रह में घुसपैठिए, यह अंत नहीं, मुंबई कांड, शवयात्रा, प्रमोशन, कुडाघर, मैं ब्राह्मण नहीं हूॅ, दिनेशपाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन, रिहाई, ब्रह्मास्त्र, हत्यारे, जंगल की रानी आदि कहानियॉ संग्रहित हैं । कहानी में ओमप्रकाश

वाल्मीकि परिवेश के साथ पात्रों की मानोदशा का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण करते हैं । उनके पात्र कभी स्थिति पर सवार होकर, उसके प्रति विरोध जताकर, उसे परिवर्तित करने का प्रयास करते हैं तो कभी स्थिति को पाठकों के सामने रख, उसके बुराइयों को दिखाते हुए उसके परिवर्तन की अभिलाषा करते हैं ।

१.३.३ कविता संग्रह

अब तक ओमप्रकाश वाल्मिकि के तीन कविता संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

१) सदियों का संताप २) बस्स !बहुत को चुका ३) अब और नहीं

इन काव्य संग्रहों में उन्होंने दलित जीवन की विभिन्न समस्याओं, यातनाओं एवं सवर्णों द्वारा किए गए अत्याचारों को अभिव्यक्त करते हुए दलित समाज को जागृत करने का प्रयास किया है । शोषित मानव की आह ही उनकी कविता है । अपनी कविताओं में वाल्मिकी चातुर्वण्य समाज व्यवस्था के द्वारा लादे गए नियमों को चुनौती देते हैं । भाग्य, भाग्यववाद, ईश्वर, नियती को लताडते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि उनके पीछे व्याप्त स्वार्थ एवं भाडयंत्र का भंडाफोड करते हैं । उनकी कविताएॅ कहानी साहित्य से कई अधिक विद्रोही और आक्रमक है । इन संग्रहों मे ८० से अधिक कविताएॅ संग्रहित हैं जिनमें — ठाकुर का कुंआ, कविता और फसल, ांबुक का कटा सिर, झाडू वाली, सदियों का संताप, पेड, खेल उदास है, पंडित का चेहरा, दंगे के बाद, बस्स । बहुत हो चुका, मेरे पुरखे, शायर आप जानते हो, दिया, तब तुम क्या करोगे आदि महत्वपूर्ण कविताएॅ हैं । इस प्रकार उनकी कविताएॅ दलित जीवन की

करूण अभिव्यक्ति है जो गहरे तक कचोटती है । कविताओं का पैनापन उनकी विशेषता है और सौंदर्य भी ।

१.३.४. आलोच्य कृति

१.३.४.१ दलित साहित्य का सोंदर्यशास्त्र

इस आलोच्य कृति का प्रकाशन सन २००१ में राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ । यह किताब दलित साहित्यांदोलन की कमी को पूरा करते हुए दलित रचनात्मकता के कुछ मूलभूत समस्याओं और प्रस्थान बिंदुओं की खोज भी करती है । दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र तथा रचनात्मकता के संदर्भ में जो प्रश्न उठाए गए थे, उसका समाधान प्रसतुत करने का प्रयास यह रचना करती है । साथ ही वर्चस्ववादी अभिजात्य वर्ग की धारणाओं को तोडने का काम करती है जो युग–परिवेश की मॉग है । 'दलित साहित्य की भाषा, वर्ण्य विषय, शिल्प को लेकर कई सवाल उठाए गए , जो दलित साहित्य की गतिविधियों के रास्ते में बाधा डालने के उद्देश्य से उठाए गए थे । इन सवालों के सटीक जवाब देना निहायत जरूरी था । ओमप्रकाश वाल्मीकि की प्रस्तुत कृति इन सवालों के न केवल जवाब देती है बल्कि साथ ही नाव दलित लेखकों और संशोधकों का मार्गशर्दन भी करती है ।

१.३.४.२ मुख्यधारा और दलित साहित्य

इस रचना में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने साहित्य की मुख्यधारा कौन–सी है ? इस प्रश्न पर अपने विचार व्यक्त किए हैं । ओमप्रकाश वाल्मीकि सवाल उठाते हैं कि जो साहित्य कल्पना के सागर में गोते लगाता है, जो चंद पेट भरे लोगों की सुविधा भोगी जिंदगी को मनोरंजन के धरातल पर अभिव्यक्त करता है, जिस साहित्य में जीवन की समस्या से

मुँह मोड, उपभोग का समर्थन किया है, वह मुख्यधारा का साहित्य कैसे हो सकता है ? इस प्रकार का प्रश्न वे उपस्थित करते हुए दलित साहित्य धारा, जो मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर करते हुए न्याय, समता एवं विश्वबंधुत्व की कामना करती है, उसे मुख्यधारा के रूप में प्रतिि ठत करने का प्रयास करते हैं ।

१.३.५ नाटक

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने महारा ट्र में सन १९७४ में अपने मित्रों के साथ मिलकर 'मेघदूत' नामक नाट्यसंस्था की स्थापना की । इस नाट्यसंस्था के लिए कई नाटकों का मंचन तथा निर्देशन किया तथा कई नाटकों में अभिनय किया । अपनी नाट्यसंस्था के लिए उन्होंने कुछ नाटक भी लिखे जो – अप्रकाश्य हैं । उन्हें अभिनय के लिए भी कई पुरस्कार प्राप्त हुए । उनके संस्था द्वारा निम्नंकित नाटकों का सफलता से मंचन किया गया ।

१. आधे–अधूरे (मोहन राकेश)– अभिनय एवं प्रस्तुतीकरण के लिए पुरस्कार
२. दुलारीबाई (मणि मधुकर)
३. एक था गधा उर्फ अलादाद खॉ (शदर जोशी)
४. सिंहासन खाली है (सुशिल कुमार)– अभिनय के लिए पुरस्कार
५. हिमालय की छाया (वसंत कानेटकर)– अभिनय, निर्देशन एवं प्रस्तुतीकरण के लिए पुरस्कार
६. अंधों का हाथी (शरद जोशी)
७. इकतारे की ऑख (मणि मधुकर)
८. अ स्टडी इन द नेड (अंग्रेजी)
९. दो चेहरे (स्वलिखित)– अभिनय के लिए पुरस्कार

१०.अब्दुला दीवाना (लक्ष्मीनारायण लाल)

नाटकों में रूचि उनके मन में बाल्यावस्था से ही थी किंतु जाति एवं छुआ—छूत के चलते वे गांव में अपने इस हुनर को तराश नहीं पाए लेकीन शहरों के खुले वातावरण ने इस हुनर को तराशने का अवसर दिया । उन्होंने नाटकों का अनुवाद किया तथा नाटक लिखे भी परंतु वे अप्रकाश्य है । उन्होंने साठ से अधिक नाटकों में अभिनय एवं निर्देशन किया है । 'मेघदूत' नाट्यसंस्था आज भी चंद्रपुर में कार्यरत है ।

१.३.६ अनुसंघानात्मक लेखन

१.३.६.१ सफाई देवता

राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली से सन २००४ में प्रकाशित ' सफाई देवता ' वाल्मीकि समाज के हजारों साल के दीन —हीन जीवन इतिहास का एक दस्तावेज है । इस रचना में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने वाल्मीकि समाज की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियों को प्रस्तुत किया है । यह रचना उनके तर्क एवं वैचारिकता का उत्कृष्ट नमुना है । उन्होंने आज के शोषण और खस्ताहाल स्थिति के कारण इतिहास के गहराई में जाकर खोजने का प्रयास किया है तथा परंपरागत रूढियों, धार्मिक आडंबरों पर सवालियॉ निशान लगाएँ हैं । वे इस प्रश्न की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं कि देश में वाल्मीकि समाज में उचचशिक्षित जो वर्ग है — वैज्ञानिक, खिलाडी, पत्रकार, कलाकर, राजनीतिक सभी बडे पैमाने पर अपनी पहचान एवं सरनेम छिपाने लगे है क्योंकि जैसे ही उनके भंगी होने का पता चलता है समाज का उनके और देखने का नजरियॉ ही बदल जाता है ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि प्रस्तुत रचना के माध्यम से भंगी (वाल्मीकि) समाज के नव पीढि के मन से हीनता बोध निकलाने का प्रयास

करते है । भारतीय प्राचीन इतिहास, इतिहास संशोधन, प्रज्ञासूर्य डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर आदि के हवाले देते हुए, वे भंगी समाज के प्राचिन इतिहास को सामने लाते हैं जहॉ उनकी भूमिका महत्वपूर्ण रही है । इस संशोधन ग्रंथ के माध्यम से ओमप्रकाश वाल्मीकि ब्राह्मण्य व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, उंच—नीचता आदि की कल्पनाधरित शोषण व्यवस्था को ध्वंस करने का प्रयास करते हैं ।

१.३.६.२ दलित साहित्य : अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ

दलित साहित्य की रचना प्रक्रिया तथा लेखक की जद्दोजहद को प्रसतुत रचना स्पष्ट करती हैं । राधाकृष्ण प्रकाशन, नवी दिल्ली से सन २०१३ में प्रकाशित यह रचना दलित साहित्य के संबंध में कई गलत फहमियों को दूर करती हैं । दलित लेखक की प्रतिबद्धता, उनमें व्याप्त आक्रोश तथा आलोचकों का नकारात्मक रवैया, इस पर भी वे मत प्रकट करते हैं । आक्रोश दलित साहित्य की उर्जा है जो किसी व्यक्ति, किसी विशि ट समाज का विरोध नहीं करता बल्कि शोषण की व्यवस्था का विरोध करता है । दलित साहित्य का उद्देश्य मनु य की गैरबराबरी को नष्ट कर समता स्थापित करना है । अतः उसके विरोध का स्वर रचनात्मक है ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्य, पाठक का मार्गदर्शन करते हुए कई विवादात्मक मुददों पर अपने विचार व्यक्त करते हैं, जिसमें दलित साहित्य का वैचारिक पक्ष, संघ र्ा, दलित साहित्य की लोक तांत्रिकता, सामाजिक प्रतिबद्धता, रचना प्रक्रिया, साथ ही प्रेमचंद, नागार्जून के दलित संदर्भ का भी समावेश है ।

१.३.७ अनुवाद कार्य

सृजनात्मक, अनुसंघानात्मक लेखन के साथ ही ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अनुवाद कार्य भी किया है । अपने अध्ययनशील स्वभाव के चलते, वे कई प्रकार का साहित्य पढते हैं । उनमें से विशेष प्रभावित करनेवाली रचनाओं का उन्होंने हिंदी में अनुवाद किया । सायरन का शहर (अरूण काले, मराठी) मैं हिंदू क्यों नहीं (कांचा एलैया, अंग्रजी) तथा लोकनाथ यशवंत की अनेक कविताओं उन्होंने हिंदी में अनुवाद किया ।

१.३.८ अन्य

- ❖२८ वे अस्मितादर्श साहित्य सम्मेलन,२००८, चंद्रपुर (महाराष्ट्र) के अध्यक्ष
- ❖भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास , शिमला सोसायटी के सदस्य
- ❖अनेक कथा संकलनों एवं कविता संग्रहों में रचनाएँ संकलित।
- ❖प्रज्ञा साहित्य के दलित साहित्य विशेषांक के अतिथि संपादक रहे ।
- ❖विभिन्न भाषाओं में कहानियॉ एवं कविताएँ अनूदित।
- ❖आत्मकथा 'जूठन' का पंजाबी, अंग्रजी, जर्मन, स्वीडिश, तमिल, माल्यालम, कन्नड, तेलगू भाषाओं में अनुवाद ।
- ❖प्रथम दलित लेखक साहित्य संमेलन १९९३ नागपुर के अध्यक्ष रहे।

१.३.९ पुरस्कार

उनके लेखन कार्य तथा बहुमुखी प्रतिभा के कारण उन्हें कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है । अभिनय तथा निर्देशन के लिए भी उन्हें पुरस्कार प्राप्त है । उन्हें प्राप्त पुरस्कार निम्न प्रकार से हैं –

डॉ. अंबेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार — १९९३

परिवेश सम्मान — १९९५

जयश्री सम्मान — १९९६

कथाक्रम सम्मान — २००१ आदि ।

न्यु इंडिया बुक पुरस्कार — २००४

८ वां विश्व हिंदी सम्मेलन २००७ न्युयॉर्क, अमरिका सम्मान

साहित्या भूषण सम्मान, २००६, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ

ओमप्रकाश वाल्मीकि एक अदम्य जिजीविषा का नाम है । ऐसी स्थिति जाहॅ सॉस लेना भी मुश्किल है, वहॉ से वे अपनी जीवन यात्रा शुरू करते हैं । इस जीवन सफर में उन्हें सायेदार रास्तों से अधिक कॉटेदार, खुरदरे, पैरों को लहु—लूहान करने वाले, तपिश भरे रास्ते ही अधिक मिले । कभी नैसर्गिक अपदाओं तो अधिक सवर्णों के छल—कपट से उनका सामना हुआ, जहॉ से वे अपनी जीवन लता को अधिक सशक्त बनाने के लिए रस बटोरते रहे । आज जो वह एक विशाल वृक्ष के रूप में सामने आते हैं उसका कारण है — विरोध, अन्याय, शोषण के थपेडों से वे अपने आपको मजबूत बनाते रहे ।

सामाजिक वि ामता और द्वेषपूर्ण व्यवस्था से वह वहशी न बनकर संवेदनशील और भावूक बनते गए । माता—पिता के मृत्यु का रंज उनके मन में हमेशा सलता है । जीवन के दुर्गम चढाव—उजारों ने उन्हें कर्मशील बना दिया । उच्च पदस्थ अधिकारी होने के बावजूद जातिगत दंशों से उन्हें पूर्णतः मुक्ति नहीं मिली ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि विपरीत परिस्थितियों से जूझकर अपना व्यक्तित्व निर्माण करते हैं । बरला से देहरादून, एक अछूत से उच्च पदस्थ

अधिकारी, अनपढ माता–पिता की संतान से एक प्रथितयश दलित लेखक की क टप्राय यात्रा तय करते हुए अपने योग्यता का लोहा मनवाने के लिए अभिजात्य वर्ग को बाध्य करते हैं ।

संदर्भ

———————————————————

१. ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों का अनुशीलन (साक्षात्कार) — बाळासाहेब बिरू कामण्णा

२. जूठन — ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. ११

३. जूठन — ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. २५

४. कथाक्रम (अप्रैल — जून २००४) — डॉ. जयप्रकाश कर्दम, पृ. ९

५. ओप्रकाश वाल्मीकी की कहानियों का अनुशीलन (साक्षात्कार) — बाळासाहेब बिरू कामण्णा

६. वही

७. शिक्षार्थी हिंदी शब्दकोश — सं.डॉ. हरदेव बाहरी, पृ. ७६३

८. नालंदा अद्यतन कोश — सं पुरू ोत्तम अग्रवाल, पृ. ८३१

९. नालंदा विशाल शब्द सागर — सं. नवलबी, पृ. १३०९

१०.जूठन — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. १३

११.वही, पृ. ६५

१२.वही, पृ. ५६

१३.वही, पृ. ५६

१४.ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों का अनुशीलन(साक्षात्कार)— बाळासाहेब बिरू कामण्णा

१५.वही

१६.जूठन — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. ७२

१७.वही, पृ. १३४

१८.आमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों का अनुशीलन (साक्षात्कार) — बाळासाहेब बिरू कामण्णा

१९.'जूठन' लेखक की ओर से ... — ओमप्रकाश वाल्मीकि

द्वितीय अध्याय

दलित विमर्श : संकल्पना, स्वरूप, निर्धारण

वर्तमान समय में हिंदी का दलित साहित्य, साहित्य में अपनी अलग पहचान बना चुका है । दलितों द्वारा लिखा गया या दलितों पर लिखा गया साहित्य प्राचीन काल से ही प्राप्त होता है । परंतु दलित साहित्य का उदय १९६०—६५ के आस—पास मराठी साहित्य में हुआ । इसी के परिणाम स्वरूप आज हिंदी में भी दलित साहित्य की सदृढ धारा प्रवाहित हो रही है । यह साहित्य आत्मानुभूति और आत्मकथानात्मक साहित्य है । जिसमें समाज की रूढि ग्रस्तता, धार्मिक ढोंग, छल—कपट, उॅच — नीचता, शोषण व्यवस्था की पोल खोलने तथा यथार्थ को समाज के संमुख लाने का प्रयास किया है । आज तक जो समाज साहित्य से वंचित रहा, जिसे हेय दृष्टि से देखा गया, उसी समाज का यह साहित्य है जो अनुभूति का खरापन लिए हुए है । अपनी भूक्तभोगी पीडा को दलित साहित्यकारों ने अपने साहित्य द्वारा वाणी दी है । इसी कारण साहित्य जगत में यह प्रश्न बार—बार उछाला गया कि दलित साहित्य किसे कहा जाएॅ ? इस प्रश्न का उत्तर यों भी दिया जा सकता है— 'जाके पॉव न फटी बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई ।' जिसने कभी रोटी और चटनी खाई ही नहीं । वह चटनी के तिखेपन को कैसे अभिव्यक्त कर पाएगा ? और किया भी तो उसमें कितनी प्रामाणिकता होगी ? अर्थात् दलित जीवन की पीडा को अनुभूति के ईमानादारी के साथ एक दलित लेखक उदारमतवादी सवर्ण, मार्क्सवादी या गांधीवादी से बेहतर अभिव्यक्त कर सकता है ।

दलितत्व अत्यंत प्राचीन होते हुए भी ' दलित ' शब्द आधुनिक है । आधुनिक काल में ' दलित ' शब्द का प्रयोग ई. स. १९३१ लाहोर के 'दयानंद दलित उद्धार मंडल' नाम के संगठन ने एक संदेश में '

दलितबंधु ' शब्द का प्रयोग किया । प्रा. यशवंत वाघेला उल्लेख करते हैं— सन १९३२ ई. में मेकडोनाल्ड द्वारा Despressed class पद प्रसिद्ध किया जो दलित अर्थ सूचक था ।[१] दलित अभ्यासक डॉ. सुनिता साखरे के अनुसार 'बहिष्कृत भारत के १६ नवंबर, १९२३ के अंक में दलित शब्द का पहली बार प्रयोग हुआ । कुछ विदवान आर्य समाज द्वारा दलित शब्द का प्रथम प्रयोग करने की बात करते हैं । तो कुछ विद्वानों का मानना है — विवेकानंद तथा रानडे ने दलित शब्द का प्रयोग पहले किया । किंतु यह निर्विवाद सत्य है कि महारा ट्र में ९ जूलाई, १९७२ के दलित पैंथर के स्थापना के बाद दलित एवं दलित साहित्य का प्रयोग बडे पैमाने पर हुआ । महारा ट्र में सन १९७० के दशक में ' दलित ' शब्द का सबसे अधिक प्रचार—प्रसार 'दलित पॅथर' ने किया ।

इस प्रकार लगभग बीसवीं ाती के आरंभ से ही ' दलित ' शब्द का प्रयोग होने लगा । किंतु अभी तक दलित कौन है ? अथवा किसे कहा जाएॅ ? इस संदर्भ में अनेक मत — भेद व्यक्त किये जाते हैं । कुछ विद्वान समाज व्यवस्था के अंतर्गत अछूत, ाूद्र कहलाएॅ जाने वाले व्यकित्यों को 'दलित' मानते हैं । तो कुछ विद्वान सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा अन्य किसी भी कारण से शोषित, पीडित, उपेक्षित, बहि कृत तथा अभावग्रस्त व्यक्ति को दलित मानते हैं, चाहे वह किसी भी जाति—धर्म अथवा लिंग का हो । समीक्षकों ने प्रथम स्तर के विद्वानों को संकल्पावादी तो दूसरे स्तर के विद्वानों को उदारमतवादी कहा है ।

दलित के संदर्भ में यह बात है कि उन्हें इन्सान होते हुए भी इन्सान का दर्जा नहीं दिया गया । दलित संकल्पना के पीछे आर्थिक मद्दा गौण और जातीय दंश, मानसिक प्रताडनाएॅ, उत्पीडन, उपहास अधिक महत्वपूर्ण है । उन्हें छूना तक पाप हो गया, उनसे सेवा तो करवा ली गई, पर उन्हें भी पेट हैं, जिसे दो वक्त की रोटी चाहिए । इसे नजर अंदाज

किया गया । उनकी स्त्रियों का उपभोग तो लिया जा सकता था, बस उसके हाथ का छूआ पानी नहीं पीया गया । दलित एक ऐसा तबका है जो गॉव के बाहर सडांध, दूर्गंध और अभावों की मरणप्राय वेदनाओं को सहते हुए जीवन—यापन करता है । साहित्य में नरक की मात्र कल्पना है लेकिन भारतीय परिवेश में दलित नरक से भी बदतर जीवन जीने के लिए बाध्य है ।

'दलित' संकल्पना को समझने के लिए आवश्यक है कि उक्त शब्द के व्युत्पत्ति, अर्थ, परिभाषा और व्याप्ति पर विचार किया जाए । इन सभी तत्वों का विचार 'दलित विमर्श' में किया गया हैं । अतः इन तत्वों पर निम्न प्रकार से चर्चा की गई है ।

२.१ दलित विमर्श

' विमर्श ' से तात्पर्य है — चर्चा, परिसंवाद । दलित विमर्श साहित्य एवं जनआंदोलन के माध्यम से भारतीय समाज के वर्चस्ववादी व्यवस्था के सामने प्रश्न उठाने एवं उसके घिनौने रूप को उजागर करने का काम करता है । दलितत्व किसी भी व्यक्ति, समाज, राष्ट्र के लिए न केवल हानिकारक है बल्कि लज्जस्पद भी है । उसे मिटाने का प्रयास ही सही अर्थों में राष्ट्र एवं मानव उन्नति का कार्य होगा । इस धारना का वास्तववादी अवि कार दलित साहित्य है । दलित विमर्श दलितों के नकार, आक्रोश, वेदना तथा परिवर्तन के आकांक्षा की अभिव्यक्ति है, जो दलितों की दयनीय स्थिति, दलितों की उन्नति, तथा सवर्णों के बर्ताव को स्प ट एवं निडरता से वाणी देता है । व्यवस्था के नकार से जन्मा यह विमर्श समताधिष्टित समाज एवं स्वतंत्र मानव की कामना करता है ।

२.१.१ व्युत्पत्ति

संस्कृत शब्द कोशों के अनुसार 'दल' धातु में 'क्त' प्रत्यय लगने से 'दलित' शब्द विशेषण बन जाता है । जिसका अर्थ है — 'फटा हुआ, टूटा हुआ, चिरा हुआ, खुला हुआ, फैला हुआ ।[२]

इस शब्द का व्यत्पत्तिपरक अर्थ प्रवृत्तिमूलक है जो बाद में एक समाज विशेष के लिए संबोधित करने हेतू प्रयोग किया गया । आज यह शब्द इसी अर्थ में प्रयोग होता है । ऐसा समाज जो मानवीय अधिकारों से वंचित समाज व्यवस्था से बहि कृत, शिक्षा, अर्थ प्राप्ति पर पाबंदी तथा जिसका शोषण करना, यातना देना न्यायसंगत, धर्मसंगत माना गया , उसे भारतीय समाज व्यवस्था में दलित कहा गया ।

२.१.२ अर्थ

विभिन्न शब्द कोशों में ' दलित ' शब्द का अर्थ निम्नांकित रूपों में मिलता है ।

i) **दलित** — १. कुचला हुआ, दबाया हुआ (जैसे दलित वर्ग)
२. न ट किया हुआ (जैसे दलित जाति)[३]

ii) **दल** (अकर्मक) विकसना, फटना, खंडित होना ।
(सकर्मक) चुर्ण करना, टूकडे करना ।
(संज्ञा) सैन्य, लष्कर, पत्र पत्ती ।[४]

iii) **दल** — फटना, चिरना
To split, to brust open, to cleave
दल (पु.) खंड भाग टूकडा, टूकडी, पत्ता ।
A piece, a part, a portion, a small group, leaf.
दलनम (नपु) पीसना, कुचलना, रगड देना, हराना ।
Grinding, destroying, crushing, defeafing

दलित (वि) कुचला हुआ, दबाया हुआ ।

Trodden, crushed, horn |[5]

संस्कृत शब्दकोशों में ' दलित ' शब्द का अर्थ मुख्यत: दबाया हुआ, कुचला हुआ या विनिष्ठ किया हुआ मिलता है । अंग्रेजी में इसके लिए 'डस्प्रेसड क्लास' का प्रयोग किया है ।

iv) **दलित** — (A) Downtrodden, depressed.

दलित वर्ग ˙ depressed class |[६]

दलित साहित्य का मूल या उदय महाराष्ट्र की भूमि एवं मराठी साहित्य हैं । अत: मराठी शब्दकोशों में ' दलित ' का अर्थ देखना आवश्यक हैं —

v) **दलित** (स) १. दळलेले, भरडलेले

२. फोडलेले, तुकडे केलेले, मोडलेले

३. चेचलेले, दाबलेले, हलकी जात, वर्ण (स)[७]

vi) दलित (सं) वि. १. चुरडलेले, दळलेले.

२. तुडविलेले (समाजातील) उपेक्षित वर्ग (इ)

Depressed class |[८]

मराठी शब्द कोंशों में भी ' दलित ' शब्द का अर्थ संस्कृत के अनुसार ही प्रवृत्तिमूलक है ।

vii) **दलित** (वि) (सं) — (स्त्री) १. मसाला, रौंदा या कुचला हुआ ।

२. न ट किया हुआ ।

दलित वर्ग (सं. पु.) — समाज का वह वर्ग जो सबसे नीचा माना गया हो अथवा दुखी हो और जिसे उच्च वर्ण के लोग उठने न देते हो ।[९]

viii) **दलित** वि. (स)— रौंदा, कुचला, दबाया हुआ, पादाक्रांत ।

दलित वर्ग (पु)— हिंदुओं में वे शुद्र जिन्हें अन्य जातियों के समान अधिकार प्राप्त नहीं हैं ।[१०]

उपर्युक्त संस्कृत, अंग्रजी, मराठी तथा हिंदी शब्द कोशों में ' दलित ' शब्द का अर्थ — रौंदा हुआ, कुचला हुआ, मसला हुआ, नष्ट किया हुआ, शोषित, मर्दित खंडित मिलता है । कोशीय अर्थो के अनुसार ' दलित ' वह व्यक्ति है जिसे दबाकर रखा गया है, जिसका मानसिक, आर्थिक, शारीरिक शोषण किया गया है, जिसे बहि कृत, उपेक्षित, वंचित, अपमानित एवं अभावग्रस्त जीवन जीना पडा । कोशों में ऐसे व्यक्ति समाज को ' डिस्प्रेसड क्लास', ' अनुसूचित जाति ' कहा गया है ।

भारत के प्राचीन साहित्य में शुद्र, दास, दास्यू, चंडाल, अंतज्य, अस्पृश्य आदि शब्दों का प्रयोग दलितों के लिए किया गया है अर्थात् दलितत्व प्राचीन होते हुए भी दलित शब्द नया है । काल सापेक्ष दलित शब्द के प्रर्याय भिन्न प्रकार है —

'' वेदिक काल — दाल, शुद्र
स्मृति काल — शुद्र, अतिशुद्र, महाशुद्र
महाकाय काल — अस्पृश्य, अंन्तज्य, अछूत
स्वातंत्रोत्तर काल — बहि कृत, हरिजन, अस्पृश्य
आधुनिक काल — दलित, अनुसूचित जाति, जनजाति''[११]

किसी भी संकल्पना को समझने के लिए उसके कोशीय अर्थ के साथ उसकी परिभाषा एवं विभिन्न विद्वानों के मतों को जानना आवश्यक हैं । अतः विभिन्न विदवानों की परिभाषाएँ देखना समीचीन होगा ।

२.१.३ 'दलित' शब्द की परिभाषा

' दलित ' शब्द को परिभाषित करने का प्रयास दलित तथा दलितेत्तर दोनों प्रकार के विद्वानों ने किया है । यहॉ दोनों प्रकार के विद्वानों के विचार दृष्टव्य हैं । यह भी स्पष्ट हो कि परिभाषाओं को सुविधा के लिए निम्न विभागों में विभाजित किया है ।

१. संकल्पनावादी परिभाषाएँ

२. उदारमतवादी परिभाषाएँ

२.१.३.१ संकल्पनाववादी परिभाषाएँ

इसमें 'दलित' संकल्पना को उसके मूल और यथार्थ रूप में परिभाि ात करने का प्रयास किया हैं । जो दलित और उनके स्थिति को अधिक स्पष्टता से व्यक्त करती हैं –

१. लक्ष्मणशास्त्री जोशी

'' दलित मानवीय प्रगति में सबसे पिछडा हुआ और पीछे ढकेला गया सामाजिक वर्ग है । हिंदू समाज में जिन व्यक्तियों को गॉव के बाहर रहने के लिए बाध्य किया गया और जिससे समाज विशे ात: सवर्ण समाज शारीरिक सेवाएँ तो लेता रहा लेकिन जीवनावश्यक प्राथमिक जरूरतों से भी जिन्हें वंचित रखा गया और पशुओं के स्तर पर घृणित जीवन जीने के लिए बाध्य किया गया – अछूत अथवा दलित है । ''[१२]

२. नामदेव ढसाळ

'' दलित अर्थात् अनुसूचित जातियॉ, बौद्ध, कष्ट उठानेवाली जनता, मजदूर भूमिहीन मजदूर, गरीब किसान, खानाबदोश जातियॉ, आदिवासी आदि है । ''[१३]

३. रामलाल विवेकी

'' ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य के अलावा समस्त हिंदू समुदाय दलित वर्ग के अंतर्गत ही माना जात है । दलित वर्ग में इस्लाम धर्म अंगीकार करने वाले बौद्ध या इसाई धर्म ग्रहण करने वाले दलित वर्ग के लोग भी आते है । ''[१४]

४. डॉ. सुनिता साखरे

'' भारतीय सनातनी सामाजिक वर्ग व्यवस्था में निचली श्रेणी का वर्ग और उससे संबंधित विभिन्न जातियॉ और वर्ग व्यवस्था मे बाहर जीने वाली जनजातियॉ जो हिंदू व्यवस्था में परंपरा से अछूत, सांस्कृतिक दृष्टि से ताज्य, आर्थिक दृष्टि से शोषित और सामाजिक दृष्टि से उपेक्षित, बहि कृत समाज है, वह दलित कहलाता है । ''[१५]

५. ओमप्रकाश वाल्मीकि

'' दलित शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयोग होता हैं जो समाज व्यवस्था के तहत सबसे निचली पायदान पर है वर्ण व्यवस्था ने जिसे अछूत, अन्तज्य की श्रेणी में रखा है । उसका दलन हुआ है । शोषण हुआ है । इस समुह को ही संविधान में अनुसूचित जातियॉ कहा गया है, जो जन्मता अछूत हैं । ''[१६]

२.१.३.२ उदारमतवादी परिभाषा

इन परिभाषाओं में उन समस्त सामाजिक तबकों को जिनका किसी भी प्रकार से शोषण हुआ हो, दलित वर्ग में समाहित किया गया है।

१. डॉ. एन. सिंह

'' दलित शब्द की सीमा में केवल शूद्र ही नहीं आते बल्कि स्त्री और पिछडे जाति के साथ अन्य सवर्ण जातियों के वह सवर्ण लोग भी

आते हैं जिनका किसी भी दशा में मानसिक अथवा आर्थिक शोषण हुआ है। ''[१७]

२. **डॉ. तारा परमार**

'' दलित को भ्रमवश लोग अनुसूचित जाति का ही पर्याय मानते हैं, जब कि ऐसा नहीं है । दलित कोई भी व्यक्ति हो सकता है चाहे अनुसूचित जाति का हो या गैर अनुसूचित जाति का, जिसका दलन हुआ है या हो रहा है वे सभी दलित है । ''[१८]

३. **डॉ. पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी**

'' दलित एक संवेदना है, विचार है जिसका अर्थ दबाया गय है, दबा हुआ नहीं । सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से शास्त्र एवं शस्त्र के बल पर दबाया गया मनुष्य किसी भी जाति, वर्ण, धर्म मत, पंथ एवं भौगोलिक क्षेत्र का हो दलित है । '' [१९]

४. **डॉ. चंद्रकांत बांदीवडीकर**

'' दलित यानी अनुसूचित जातियॉ, बैधिक कष्ट उठाने वाली जनता, मजदूर, भूमिहीन, गरीब, किसान, खानादोश जातियॉ, अदिवासी, दलित शब्द की यह जति निरपेक्ष परिभाषा है । असल में जिन जातियों को महात्मा गांधी ने हरिजन कहा था । वे जातियॉ दलित नाम से पहचानी गई । '' [२०]

५. **हर्ष मंदार**

'' दलित शब्द का शाब्दिक अर्थ गरीब और उत्पीडित व्यक्ति से है । लेकिन यह नई संस्कृति पैदा करने के संदर्भ में ध्वनित होता है । दलित व्यक्ति अपने नीचे की जमीन तोडते हैं और वे उपर उठने के लिए सचेतन रूप से सक्रिय प्रयास करते हैं । निश्चित अवधि में मुख्यतः यह शब्द पूर्व के अस्पृश्यों के लिए प्रयोग होता है । यद्यपि अधिकांश स्थिति

में कभी – कभी विस्तृत क्षेत्र में उत्पीदित वर्ग भी शामिल होता है । जैसे आदिवासी महिलाएँ, बंधुआं मजदूर, और अल्पसंख्यांक आदि । '' [२१]

उपर्युक्त संकल्पनावादी और उदारमतवादी परिभाषाओं को देखने के पश्चात् निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि संकल्पनावादी परिभाषाएँ 'दलित' को उसकी मूल प्रवृत्ति और विस्तार के साथ अभिव्यक्त करती है । दलितों की समस्या मात्र आर्थिक या धार्मिक न होकर जातिगत ऊँच–नीचता, छुआ–छूत, तथा सामाजिक बहिष्कार, उपेक्षा है । उदारमतवादी व्याख्याकार समस्त भारतवर्ष को हो दलित श्रेणी में लाने के प्रयास में जूटे हुए लगते है । डॉ. चंद्रकांत बांदीवडीकर की परिभाषा मे भारत की कम – से – कम ९० प्रतिशत से अधिक आबादी सामाहित होती है । उनके बौध्दिक क ट करनेवाली जनता से सभी ब्रहमण वर्ग एवं उच्च वर्णीय दलित श्रेणी में समाहित होते है । डॉ. सात्यप्रेमी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से दबाये हुए को दलित मानते हैं चाहे वह किसी भी जाति का हो । यह परिभाषा यह तय नहीं कर पाती कि स्पष्ट रूप से दलित किसे कहा जाए । क्योंकि समाज से बहि कृत, आर्थिक दृष्टि से दरिद्र होने के बावजूद राजा हरिशचंद्र तथा राजनीतिक दृष्टि से उपेक्षित, समाज से बहि कृत होने के बावजूद राम – लक्ष्मण एवं पांडवों को दलित कहा जा सकता है ? सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक में से किसी एक से नहीं बल्कि सभी से उपेक्षित दलित है ।

अत: कह जा सकता है कि संकल्पनावादी व्याख्याकारों ने 'दलित' संकल्पना को अधिक सटीकता से परिभाषित करने का प्रयास किया है तो उदारमतवादियों ने अनावश्यक विस्तार दिया है । भारतीय परिप्रक्ष्य में दलितत्व जन्म के आधार पर मिला है गुण के आधर पर नहीं । इसलिए सर्वहारा वर्ग के सभी शोषित दलित नहीं हो सकते । सभी स्त्रियों

को दलित मानना भी अपने आप में एक विसंगति है । क्योंकि उच्चवर्गीय नारी जाति गर्व महसूस करती हैं तो दलित नारी जाति ग्लानी से पीडित हैं। उपर्युक्त स्थितियों के कारण ही दलित की परिभाषा का मानक जाति होना आधिक संयुक्तिक लगता है ।' दलित ' को निम्न प्रकार से अधिक सटीकता से परिभाि ात किया जा सकता है । जिसका जातीय द्वेष, सामाजिक उपेक्षा के साथ ही आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक छल— प्रपंच के द्वारा शोषण किया गया हो तथा जिसे मानवाधिकार से वंचित रख पशुतुल्य जीवन जीने के लिए बाध्य किया गया हो, भारतीय समाज का ऐसा उपेक्षित तबका —' दलित ' है ।

२.२ दलित चेतना

चेतना से तात्पर्य है — बोध, आकलन । चेतनायुक्त व्यक्ति, समाज की खासियत होती है कि वह अपने संबंध में, समाज में धटित होनेवाली छोटी — बडी घटनाओं का, परिवर्तनों का मूल्यांकन करता चलता है । चेतना के अभाव में वह परिवर्तन को देख तो सकता है लेकिन उसका आकलन नहीं कर सकता । ''चेतना का अर्थ है '' चैतन्य; ज्ञान;होश । प्राणशक्ति; जीवनी शक्ति । आकलन शक्ति; ग्रहण शक्ति । ''[२२]

अर्थात् चेतना के अभाव में व्यक्ति, समाज जीवित होकर भी मृत समान होते है जैसे दलितों की स्थिति रही । भारतीय समाज व्यवथा के अन्याय,अत्याचार, अमानवीयता, धोखा — धडी को वह देख तो सकता था लेकिन चेतना के आभाव में उसका सही मूल्यांकन, आकलन नहीं कर पाता था, परिणाम स्वरूप वह उसे अपनी नियती मान, शोषण का मूक समर्थक ही बना रहा । मराठी के वरिष्ठ दलित साहित्यकार सुर्यनारायण रणसुभे दलित साहित्य के परिभाषा के बहाने दलितों की स्थिति एवं उनकी चेतना पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं — '' भुख के अलावा और किसी

भी प्रकार की जरूरत को दलितो में उभरेन नहीं दिया गया था । श्रम और भूख तथा भूख और श्रम, यही तक इनकी जीवन यात्रा को सीमित कर दिया था । ''[२३]

ज्ञान प्राप्ति की पाबंदियों ने दलितों में चेतना का विकास ही नहीं होने दिया । ज्ञान अर्थात् बोध स्थितियों की परख की क्षमता विकसित करता है, परख की क्षमता से दृष्टिकोन विकसित होता है और विवेकी दृष्टि का व्यक्ति, समाज न केवल भूत, वर्तमान बल्कि भवि य को भी अपने चिंतन के दायरे में खींच लाता है । संक्षेप में चेतना यानी ऐसी आंतरिक शक्ति जो शुभ—अशुभ, उचित — अनुचित, सही — अनर्गल, काल्पनिक — तार्किक, कर्मवाद — भाग्यवाद को समझने, परखने की दृष्टि प्रदान करती है ।

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के जीवन संघर्ष और विचारों ने दलितों की मृत चेतना को चेतित करने का काम किया । उनमें नए प्राण फुंके और सोचने की अजस्र शक्ति प्रदान की । डॉ. बाबासाहेब इतिहास, धर्म, समाज की तर्काधिष्टित चिकित्सा करते हुए दलितों के दयनीय, अमानवीय स्थिति के कारकों को न केवल दलितों के बल्कि दुनिया के सामने रखते हैं । बाबासाहेब की अपार विद्वत्ता और परिश्रम ने कई सवाल प्रस्थापित वर्ण व्यवस्था एवं दलितों के सामने खडे किए, जो अनुत्तरित रहे । परिमातः दलितों में अपने होने के बोध की नई चेतना जागृत हुई । यह चेतना दलित चेतना है । ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित चेतना के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं — '' दलित चेतना का सरोकार इस प्रश्न से गहरे तक जुडा है कि मैं कौन हूँ ? मेरी पहचान क्या है ? इसी सवाल से दलित लेखक को रचनाशीलता को उर्जा मिलती है । ''[२४]

महात्मा फुले, डॉ. बाबासाहेब आंबेडक के कार्य एवं विचारों में दलितों के आत्मबोध को जगाया और अपनी स्थिति के बारे में सोचने के लिए मजबुर किया । भाग्य, भगवान, धर्म, परलोक, प्रारब्ध, पुनर्जन्म तथा परंपरागत कर्मकांड, रूढी – परंपराओं की तर्कसंगत, वैज्ञज्ञनिक चिकित्सा की । डॉ. बाबासाहेब के कतृत्व का मानबिंदू संविधान दलितों का पथदर्शक एवं हितैशी बना और दलित अपने अधिकारों की न्यायिक मांग के लिए संघर्ष का पैतरा अख्तियार करने लगे । अपने होने की किमत एवं अधिकारों के न्यायिक मांग को सजगता ही दलित चेतन है । दलित व्यंगकार राम अवतार यादव कहते हैं – '' दलित को किन बातों से सरोकर रखना हैं, किससे नहीं, इस विचार का संज्ञान दलित चेतना है ।''[२५]

संक्षेप में कहॉ जा सकता है कि डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के जीवन संघर्ष एवं उनके राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विचारों के कारण दलितों में अपने होने की एवं अपने न्यासंगत मानवीय अधिकारों के मांग की जो उर्जा चेतित हुई, उसिका नाम दलित चेतना है । बौदध धम्म का स्वीकार करते समय बाबासाहेब ने दलितों को जो बाहस प्रतिज्ञाएँ दी थी, वह दलित चेतना के मानक माने जा सकते हैं । इन प्रतिसाओं से स्पष्ट रूप से मार्गदर्शन होता है कि दलितों को क्या करना चाहिए और क्या नहीं ? वरिष्ठ दलित लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित चेतना के निम्नलिखित मुख्य बिंदू मानत हैं –

१. मुक्ति और स्वतंत्रता के सवालों पर डॉ. अम्बेडकर के दर्शन को स्वीकार करना ।
२. बुद्ध का अनीश्वरवाद, अनात्मवाद, वैज्ञानिक दृष्टिबोध, पाखंड, कर्मकांड विरोध ।
३. वर्ण व्यवस्था विरोध, जातिभेद – विरोध, सांप्रदायिकता विरोध ।
४. अलगाववाद का नहीं, भाईचारे का समर्थन ।

५. स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय की पक्ष्रता ।

६. समाजिक बदलाव के लिए प्रतिबद्ध ।

७. आर्थिक क्षेत्र में पूँजीवाद का विरोध ।

८. सामंतवाद, ब्राहमवाद का विरोध ।

९. अधिनायकवाद का विरोध ।

१०. महाकाव्य की रामचंद्र शुक्लीय परिभाषा से असहम

११.वर्णहीन, वर्गहीन समाज की पक्षधरता ।

१२.पारंपारीक सौंदर्यशास्त्र का विरोध ।

१३.भाषावाद, लिंगवाद का विरोध । ''[२६]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि दलितों में जो आत्मबोध जागा जिसके परिणामस्वरूप वह समय और समाज का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मूल्यांकन करने लगा तथा मानव को उॅच – नीचता के जखडन से मुक्ति दिलाने हेतु, वर्ग एवं वर्ण विहीन समाज स्थापना हेतु, शोषित – दलितों के न्यायसंगत अधिकारों के लिए छटपटाने लगा । मानव कल्याण हेतु दलितों के हृदय में कुनमुनवाली झटपटाहट ही दलित चेतना है, जिसमें सही अर्थों में सर्वजन हीताय का संकल्प है ।

२.३ दलित साहित्य

' दलित ' को लेकर जिस प्रकार मत–भिन्नता पाई जाती है, उसी प्रकार ' दलित साहित्य ' के संबंध में भी मत–भिन्नता पाई जाती है । दलित साहित्यकारों का मानना है – 'दलितों दवारा दलितों के जीवन पर लिखा गया ऐसा साहित्य, जिसमें उसके दुख – दर्द, उत्पीडन और शोषण को भूक्तभोगी के माध्यम से अभिव्यक्त किया है । इसमें अनुभूति का खरापन, विद्रोह, समता एवं आंबेडकरवादी विचारों पर बल दिया गया है ।

यह साहित्य मात्र कोरा काल्पतिनक साहित्य न होकर एक जीवनांदोलन हैं जिसमें दलितों के अधिकारों की मॉग और उन पर होने वाले अत्याचारों के खिलाफ विद्रोही स्वर है । इसी कारण दलित साहित्यिक करूणा या कोरी सहानुभूति परक लिखे साहित्य को ' दलित साहित्य ' मानने से इनकार करता है । दलित लेखक एवं समीक्षक शरणकुमार लिंबाळे ' दलित साहित्य ' को इस प्रकार परिभाषित करते हैं —'' दलित साहित्य अर्थात् दलित लेखकों द्वारा दलित चेतना से दलितों के विषय में किया गया लेखन । ''[२७]

डॉ. विमल थोरात दलित साहित्य को परिभाषित करत हुए कहती हैं — '' जिस अपमान, वेदना और यातना को दलित समाज ने भोगा है, उसके विरोध में आक्रोश भरा स्वर दलित साहित्य में उभरता है । दलित साहित्य उस अनोखे अनुभव की विश्व अभिव्यक्ति है जिसे मजबूरन उसने सदियों तक भोगा है । ''[२८]

डॉ. विमल थोरात की उपर्युक्त परिभाषा भी अनुभव के खरेपण और प्रामाणिकता को महत्व देती है ।

गैर दलित लेखक दलित जीवन को चित्रित करने वाले साहित्य को ' दलित साहित्य ' मानते हैं । यहॉ ' दलित ' वर्ण्य विषय है। गैर दलित लेखकों ने दलितों का चेतना हीन चित्रण किया है । उनके स्थिति को तो चित्रित किया किंतु उसमें न नकार है, न विद्रोह । लेखक की अपनी भूमिका भी दलितों के पक्ष में नहीं है । दलितों का चित्रण वस्तु या नायक को परिणामकारकता प्रदान करने के लिए किया है । इस प्रकार का साहित्य सहजानुभूति, सहानुभूति तथा परकाया प्रवेश से लिखा गया है । साहित्य में इन स्थितियों की अपनी महत्ता है । दलित साहित्य आज तक के साहित्य, वर्ण्य विषय से भिन्न ऐसा साहित्य है जिसे मात्र सहानुभूति के आधार पर नहीं लिखा जा सकता । इसके बावजूद मानवीय संवेदनाओं से

ओत–प्रोत, सहदय, तटस्थ एवं जातीय अहम से निरपेक्ष कोई भी व्यक्ति चाहे वह जन्म से दलित न हो, दलितों के दुख, समस्या, दयनीयता, खस्ताहाल स्थिति, उच्च वर्ग की जादतियों को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त कर सकता है । इस संदर्भ में रमणिका गुप्त के विचार दृष्टव्य है – '' दलित साहित्य भोगे हुए सच को उजागर करत है और सच से मुँह – मुँह होकर अपने समाज को उबारने में मदद तो करता है साथ ही अभिजात समाज के प्रबुद्ध, उदार लोगों को अपने पूर्वजों और समकालीनों के प्रति ग्लानि एवं शर्म का एहसास पैदा कर शोषण एवं दमन परक समाज को सुधारने को प्रेरणा देता है । ''[२९]

गैर दलित लेखक भी दलित लेखकों की प्रेरणा, प्रतिबद्धता के साथ ही दलितों के उददेश से एकरूप होकर मानव मुक्ति का साहित्य रचता है तो निसंदेह वह साहित्य दलित साहित्य ही होगा । मराठी के विरष्ठ रचनाकार बाबूराव बागुल दलित साहित्य को परिभाषित करते हुए कहते हैं – '' मनुष्य की मुक्ति को स्वीकार करनेवाला, मनुष्य को महान बनानेवाला, वंश, वर्ण और जाति श्रेष्ठत्व का विरोध करनेवाला साहित्य ही दलित साहित्य है । ''[३०]

इस संदर्भ में मेरी अपनी धारणा है कि कोई भी रचना मात्र रचनाकार के नाम, जाति या विचारधारा के आधार पर किसी निश्चित प्रकार की रचना नहीं मानी जानी चाहिए । बल्कि वह रचना अपने में निहित गुणों, प्रवृत्तियों के आधार पर स्वयं को स्थापित करे । रचनाकार अपनी विभिन्न रचनाओं में अलग – अलग विचार, स्थितियों को समहित करता है । इस संदर्भ में सुमित्रानंदन पंत देखे जा सकते हैं, जिन्होंने छायावादी, प्रगतिवादी, अंतश्चेतनावादी एवं नवमानवतावदी रचनाओं का सृजन किया । यहाँ लेखक एक होने से इन सारी रचनाओं को एक ही प्रकार की नहीं माना जा सकता । दलित साहित्य के संदर्भ में भी होना यह चाहिए कि

रचना और उसमें निहित गुण, प्रवृत्तियों के आधार पर तय करना चाहिए कि वह रचना दलित साहित्य के अंतर्गत आती है या नहीं । न कि साहित्यकार के दलित, गैर दलित होने से । माना जाए कि अब तक गैर दलित रचनाकारों ने दलितों का केवल चेतना हीन वर्णन किया किंतु अब कोई उसे सुधारना चाहता हो या दलितों के अभिष्ट मे सहायक बनना चाहता हो तो उसे क्यों रोका जाए ?

साहित्य के संदर्भ में यह स्पष्ट धारणा होनी चाहिए कि रचना स्वयं अपना परिचय दे, रचनाकार नहीं । अर्थात् रचना में निहित गुण, तत्व, प्रवृत्ति, स्थितियॉ तय करेगी कि रचना किस कोटी की है । इसके लिए संबंधित साहित्य प्रकार के तत्व स्पष्ट होने चाहिए, जिस कसोटी पर रचना का मूल्य आंका जाए । दलित साहित्य में निहित तत्वों का निर्धारण होने पर यह तत्व ही किसी रचना की परीक्षा करेंगे और दलित, गैर दलित का मददा गौण हो जाएगा ।

२.४ दलित साहित्य के निर्धारक तत्व

साहित्य विशिष्ट उद्दयेश्यों से की जानेवाली निर्मिती प्रक्रिया है । यह अन्य वस्तुओं के निर्माण प्रक्रिया के समान नितांत शुष्क, रसहीन तथा जडवत न होने के बावजूद उसकी एक अपनी मानसिक प्रक्रिया होती है जो व्यक्ति के अंतस में सकारात्मक, नकारात्मक या उदासिनता के धरातल पर जूडी होती है । साहित्य भले ही स्थुल रूप में रचनाकार की नितांत व्यक्तिगत बात हो किंतु साहित्य की व्यष्टि से समिष्टि की ओर जाने की अद्भूत क्षमता उसे रचनाकार से विशिष्ट बना देती है । साहित्य भले ही रचनाकार की व्यक्तिगत सत्ता हो किंतु साहित्य की विशेषता ही स्वयं अपने आपको रचनाकार के व्यक्तिगत सत्ता से मुक्त कराती है । इसीलिए साहित्य को रचनाकार के व्यक्तित्व, विचारधारा के मापदडों से

आंकने के बाजाय उसमें निहित गुणों के आधार पर आपनाना चाहिए । रचनाकार के व्यक्तिगत मत एवं विचारधारा सामान्यत: निरंतर परिवर्तनशील होती है । वह निरंतर नित — नूतन का आग्रही होता है और कई प्रकार के साहित्य का सृजनकर्ता भी होता है । तब उस रचनाकार को एक दायरे में बांधना या उसके साहित्य को केवल रचनाकार के परिप्रेक्ष्य में देखना तर्कसंगत नहीं होगा अत: साहित्य का मूल्यांकन रचनाकार के बजाय उसमें निहित तत्वों, गुणों, विशे ाताओं के आधार पर करना अधिक समीचीन होगा ।

दलित साहित्य के संदर्भ में यह प्रश्न काफी विवादित रहा कि दलित साहित्य किसे कहा जाए ? इसका उत्तर भी कई प्रकार से दिया गया है । कुछ दलितों का चित्रण करणे वाले साहित्य को दलित साहित्य मानते हैं, तो कुछ का कहना था दलितों दवारा लिखा गया साहित्य दलित साहित्य है । इसके साथ यह भी विवाद का विषय बना कि केवल दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है ? गैर दलित रचनाकार दलित साहित्य नहीं लिख सकते या गैर दलितों के दलित जीवन को व्यर्ण्य विषय बनाए गए साहित्य को किस कोटी में रखे यह भी एक सवाल बनाया गया । असल में मद्दा साहित्य के निर्धारण से हटकर रचनाकार के निर्धारण पर आ अटक गया था । मेरी राय से कोई रचना मात्र रचनाकार के आधार पर किसी विशिष्ट वाद, विमर्श, धारा की समर्थक मानने के बजाय उस रचना में निहित तत्वो के आधार पर संबंधित वाद, विमर्श, धारा की वाहक मानना चाहिए । हर वाद, विमर्श, धारा के अपने कुछ तत्व होते हैं । यह तत्व संबंधित रचना में किस पैमाने पर, किस प्रतिबद्धता के साथ आए हैं, यह देखना जरूरी है । साथ ही उन तत्वों की प्रमुखता — गौणता का भी प्रश्न उठता है और लेखक की प्रतिनदधता का भी । अत: दलित साहित्य के निर्धारण में निर्धारक तत्वों को महत्व दिया

जाना चाहिए न कि लेखक के दलित – गैर दलित होने को । निम्न तत्व दलित साहित्य के निर्धारक तत्व माने जा सकते हैं –

२.४.१ वेदना

भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक खांचे में हजारों वर्षों से दलित समाज नरकप्राय वेदना झेलता रहा । क्या, क्यों, किस लिए इन सवालों से निरपेक्ष, अपने होने को अभिशाप मानकर न जाने कौन से और किसके पाप क्षालन में वह अपने ारीर और मन पर हजारों कोडों के दंश सहता रहा । जब तक वह अपने उपर होने वाले अन्याय को भाग्य का लेखा – जोखा मनता रहा तब तक उसके वेदना, यातना का स्वर, भाग्यवादी एवं ईश्वरवादी रहा किंतु जैसे ही आधुनातन सोच और ज्ञान के अंगीकार से छल, कपट और शोषण के नींव पर बनाए गए भाडयंत्रकारी, शोषण व्यवस्था से रू – ब – रू होता है, वह अपने मन – मस्ति क पर हजारों सालों की, लाखों लोगों की वेदना, यातना, बेचैनी महसूस करने लगता है । वह जिसे भाग्य मान रहा था वह समाज के प्रस्थापित वर्ग की सुविधाभोगी, अकर्मण्य व्यवस्था है जिसे वह मजबुरन ढोता रहा । इस अज्ञान और अतार्किक व्यवस्था के प्रति गहरे जख्म से बहते पीप की तरहा दलित लेखक के मन में तिरस्कार युक्त वेदना बहने लगती है । वेदना ही दलित साहित्य की जन्मदात्री है जो व्यष्टि में अभिव्यक्त होती है ओर समिष्टि का प्रतिनिधित्व करती है ।

दलित साहित्य हाशिए के समाज के मुक वेदना की अभिव्यक्ति है । ‘ जो जिया, जैसे जिया’ को रचनाकार साहित्य का चोला पहनता है । ‘‘ दलित जीवन में अपमान, उपेक्षा, दरिद्रता, गंदी बस्तियॉ, भूख – पीडा, वेदना और बेचैनी के शिवाय दूसरा क्या है ? यहॉ विराग के गीत गाए जाते हैं । ’’[३१]

दलित साहित्य में दुआछुत से उत्पन्न टिस युक्त वेदना, आर्थिक शोषण के फलस्वरूप उत्पन्न वेदना, सवर्णों के अत्याचारों से पीडित असहायों की वेदना, यौन शोषण को पीडा, कुछ न कर पाने की विवषता, रूढि – परंपराओं को व्यर्थ ढोने का एहसास, मानवधिकार से वंचित रहने का गम, खस्ताहाल स्थिति से उत्पन्न खीज और नीज अस्तित्व की पीडा अभिव्यक्त हुई हैं ।

२.४.२ शोषण

शोषण दलित जीवन का अविभाज्य अंग है, चाहे वह देहिक हो, मानसिक हो, आर्थिक हो या यौन शोषण । भारतीय समाज व्यवस्था जिसे श्रम विभाजन का नाम दिया जाता है, असल में वह तथाकथित निम्न वर्ग के शोषण का हथियार है । भाग्य, भगवान, प्रारब्ध के जंजालों में उलझाकर दलित समाज का हर संभव तरिके से शोषण किया गया । यहॉ तक कि दलितों के मानवीय अधिकारों को भी नकारा गया । उसे छूने भर की भी पांबदी लगा दी गयी । ज्ञान, संपत्ति अर्जन उसके लिए निि ाद्ध कर दिया गया अर्थात् उन्नति के सारे दरवाजे बंद कर दिए गए और शोषण के ऐसे दलदल में उसे धकेला गया जहॉ से मुक्ति का मार्ग ही नजर न आए । दलित समाज का शोषण धर्म, भाग्य, भगवान, प्रारब्ध, समाज, संस्कृति, रूढि – परंपरा, प्रतिष्ठा के नाम पर किया जाता रहा और शोषक वर्ग इसे अपना अधिकार मानता रहा । इसी लिए दलित साहित्य एवं समाज शोषण के हर रूप को नाजायज करार दे उसके खिलाफ विरोध का स्वर पैना करता है ।

दलित साहित्य शोषण के खिलाफ एक जीवनांदोलन है । मानसिक, शारीरिक, आर्थिक, न्यायिक, लैंगिक, सांस्कृतिक, प्रतिभा, योग्यता आदि सभी प्रकार के शोषण का चित्रण दलित साहित्य में किया

गया है । दलित साहित्य में शोषण का मात्र तटस्थता से वर्णन नहीं किया बल्कि उसके प्रति तीव्र आक्रोश, घृणा, क्रोध व्यक्त किया गया है । इसमें स्थितियों का मात्र ब्योरा न होकर बदलाव की अपेक्षा है, साथ ही शोषक के नकाब को बेनकाब करने तथा दलित समाज को शोषण के तरिको से रू – ब –रू करने का भाव भी सम्मिलित है । दलित साहित्य में शोषण के अनुचित होने का भाव निहित है ।

२.४.३ नकार

व्यक्ति, समाज को दलित बनानेवाली, उसके मानवीय अधिकारों को नकारने वाली हर मान्यता, परंपरा, सिद्धांत, संस्कृति, धर्म को दलित साहित्य नकारता है । यह साहित्य मनुष्य की महत्ता को स्वीकारता है इसलिए मनुष्य को बांटनेवाली, उसमें भेद करनेवाली तथा उसे उॅच – नीचता के पायदान पर खडा करनेवाली कल्पना, मत,तर्क, विचार को नकारता है । दलितों के वर्तमान खस्ताहाल के जिम्मेदार हिंदू धर्म, धर्म ग्रंथ, देवी–देवता, कर्मकांड, शब्द प्रामाण्यता, भाग्य– भगवान, प्रारब्ध, वर्णव्यवस्था को दलित साहित्य नकारता है और अपने लिए अलग समाताधि ित समाज की आवश्यकता महसूस करता है । इस संदर्भ में डॉ. तारा परमान कहती हैं – '' दलित को नीच एवं गुलाम बनानेवाले देवी – देवता, कर्मकांड, मोक्ष कामना, स्वर्ग – नर्क, पाप–पुण्य, पुनर्जन्म, आत्मा, परमात्मा इत्यादी में श्रद्धा उत्पन्न करनेवाले धर्मशास्त्रों, पूराणों, ग्रंथो और महाकाव्यों को नकारते हुए दलित अपनी अलग पहचान और अलग संस्कृति का निर्माण कर रहा हैं । ''[३२]

दलित साहित्य का नकार दलितों के वेदना के गर्भ से पैदा हुआ है । यह नकार अपने उपर लादी गई अमानवीय व्यवस्था के अस्विकृति के भावना का प्रतीक है । इस नकार का स्वरूप दूधारी तलावर

— सा है । एक ओर विषम व्यवस्था का नकार तो दूसरी ओर समता, बंधुता, स्वतंत्रता और न्याय की मांग । इसीलिए यह ध्यान में रखना चाहिए कि दलित साहित्य में नकार यथार्थपरक विधायक दृष्टि रखनेवाला न्यायपरक प्रतिकार है । यह नकार मात्र निषेध न होकर अनुचित का अस्वीकार और उचित का आग्रही है तथा नव निर्माण का अभिलाषि है । दलित साहित्य में व्याप्त नकार, नकारा भावना न होकर अवांछित, अनुचित का निषेध है । यह व्यक्ति सापेक्ष न होकर समाज सापेक्ष है । इस प्रकार दलित साहित्य का नकार विशिष्टता — अविशिष्टता को समाप्त कर दोनों के लिए एक विधान की आवश्यकता महसूस कर समता की कामना करता है ।

२.४.४ संघर्ष

दलित समाज सैंकडों वर्षों से हिंदू धर्म, संस्कृति, मनु के विधान, दैववाद के चुंगुल में फसा रहा जिसने दलितों का जीवन ही अनगिनत समस्याओं और यातनाओं से भर दिया । रोजमर्रा का जीवन ही उनके लिए जीवन संघर्ष बना । प्रस्थापित वर्ग ने दलित समाज की ऐसी दशा बनाई, जिसमें वह दो वक्त की रोटी के लिए ही हाडतोड मेहनत करता रहा । लेकिन उसे दो वक्त की रोटी भी नसीब न हो सकी । खास बात यह भी है कि दलित समाज को लंबे समय तक दंड विधानों और मान्यताओं के माध्यम से अन्न प्राप्ति में ही उलझाया गया । अतः वह अपने होने और अधिकारों के प्रति सचेत ही नहीं हो पाया । असल में अर्याभाव और अज्ञान ने उसे सोचने की सहुलियत ही नहीं दी । इसलिए चेतना से युक्त दलित समाज शोषण और दमन की हर व्यवस्था, भाडयंत्र के खिलाफ संघर्ष का पैंतरा अपनाता है ।

दलित साहित्य संघर्ष की घटनाओं से भरा पडा है । यह संघर्ष बाहरी व्यवस्था के साथ ही पात्रों के आंतरिक मनोभूमि में भी व्याप्त है । बाहरी व्यवस्था के दोगले और पाखंडी रीति – रिवाजों, चाल – चलन, उॅच – नीचता, शोषण के खिलाफ संघर्ष है ही पर मुख्य संघर्ष है अपने पहचान और अस्तित्व का । यह एक ऐसे समाज का सच हैं, जिसे अन्य समाज तहाकों ने मानवधिकार से वंचित रखा । उन्हें बद–से–बदतर जीवन जीने के लिए बाध्य किया गया । ऐसे प्रस्थापित तबकों के प्रति संघर्ष का स्वर लाजमी है ।

संघर्ष विद्रोह या क्रांति के लिए पृष्ठभूमि तयार करता है । संघर्ष एक प्रक्रिया है तो विद्रोह उसकी परिणिति है । चेतना से उचित अनुचित का ज्ञान होता है और ज्ञान के आलोक में व्यक्ति, समाज उचित के लिए संघ रित रहता है । संघर्ष ही नव निर्माण की आहट भी है और शुरूआत भी । दलित साहित्य एवं समाज समताधिष्टित नव समाज का आग्रही है, जो जड व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष की अनिवार्यता को स्वीकार करता है । अत: संघर्ष दलित साहित्य का महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व माना जा सकता है ।

२.४.५ विद्रोह

दलितों में ठगो जाने की तीव्र भावना है और इस भावना की परिणीति उसके द्वारा प्रचलित मान्यताओं, सिद्धातों, व्यवस्था को चूनौती देने के रूप में व्यक्त होती है । जिसे वह अपना धर्म, संस्कृति, अपने लोग मान रहा था, उसकी असलियत डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के चिंतन ने सामने लायी । दलित समाज को केवल और केवल शिकार बनाया गया, अपने लिए सुख के साधन जुटाने हेतु । दलितत्व ईश्वरीय न होकर व्यवस्थागत है, जिसे स्वार्थपूर्ति के लिए थोपा गया है; इसका ज्ञान होने से

दलित समाज उद्‌वेग से भर जाता है और हिंदू धर्म की सभी मान्यताओं को सिरे से खरिज करने, उसे समाप्त करने, त्यागने के लिए पूरजोर कोशिश करने लगता है । प्रचलित व्यवस्था के प्रति नकार, निषेध, अस्वीकृति और इसे दर्ज करने के प्रयास दलित साहित्य में विद्रोह के रूप में अंकित हैं । इस संबंध में रामअवतार यादव दर्ज करते है '' जिस व्यवस्था ने दलितों को ईश्वर का भय दिखाकर उनका शोषण किया, उन्हें गुलाम बनाया तथा उन्हें शिक्षा एवं संपत्ति के मौलिक अधिकारों से वंचित कर दिया उन व्यवस्थाओं, मान्यताओं, सिद्‌धातों पर दलित साहित्य जमकर प्रहार करता है । ''[३३]

विद्रोह मात्र हिंसा, खुन—खराबा या प्रतिशोध नहीं है, वह सुनियोजित ढंग से सयंम और सामंजस्य के साथ कि हुयी असहकारात्मक, अहिसंक कृति हो सकती है । इसके लिए जरूरी तत्व है, भूमिका की स्पष्टता और विचारों की दृढता । दलित साहित्य में हिंसक और अहिंसक दोनों प्रकार से विद्रोह प्रकट हुआ है । विद्रोह अपने अंतस में निहित उद्‌वेग को प्रचलित परिपाठी को तोडने और उसे आवाह्न करने के लिए किया जाता है । डॉ. बाबासाहेब की इस संबंध में स्पष्ट धारणा थी कि विरोध विचारों — मान्यताओं का होना चाहिए, व्यक्ति या समाज का नहीं । इस तथ्य को अंगीकार करते हुए दलित साहित्य को अपने विद्रोह का स्वर पैना तो करना ही चाहिए लेकिन इस बात का भी ध्यान रखना है कि विद्रोह व्यक्ति केंद्रित न होकर व्यवस्था, मान्यता केंद्रित हो, जिसके नष्ट होने पर समाता प्राप्ति का अभिष्ट साध्य हो ।

२.४.६ सामाजिक परिवेश और परिवर्तन

दलित जीवन के विदारक स्थिति का कारण जहॉ हिंदू धर्म की मान्यता है, सिद्‌धांत, भाग्यवाद है, वहीं उसकी परिणिती का स्थल है

दलितों के घर एवं रहने की जगह । ज्ञान और संपत्ति के अधिकारों से नि कासित दलित समाज का जीवन पशुओं से भी बदतर रहा । पशुओं को छुआ जा सकता था किंतु दलितों को नहीं । फटे हुए कपडे, ढहे हुए मकान, किच — काई से भरी गलियॉ, भूख से बिलबिलाते बच्चे, फटे कपडों से तन ढकती स्त्रियॉ ।, उच्च वर्ग की मार से सुजे बदन पुरूष, पेंट भरने के लाले परिणामत: जुठन एवं बासी अन्न हेतु ललचाई आंखे — दलित जीवन का यथार्थ है । श्रम प्रतिष्ठा की खोखली महती का ढोंग पोटनेवाली वर्णव्यवस्था के समर्थकों ने दलितों के हिस्से कभी भी प्रतिष्ठित श्रम नहीं आने दिया । उसे हिन, हेय, शारीरिक श्रम से थका देने वाले काम बिना मुआवजे के दिए गए । हिंदू धर्म में नरक की मात्र कल्पना है किंतु उन्होंने अपने कहे जाने वाले समाज वर्ग को नरक से भी बदतर जीवन जीने के लिए बाध्य किया । ' वसुधैवकुटुम्बकम ' का नारा देनेवाली भारतीय संस्कृति दलितों का दोहन तो करती रही किंतु उसे दलितों को छूने से, उन्हे इन्सान मानते से ऐतराज रहा ।

दलित साहित्य 'दलित जिस परिवेश में जीता है, रोजी — रोटी के लिए जो काम कहता है, उच्चवर्गीय समाज के जो अत्याचार सहता है, उसके आज्ञान और निर्धनता के जो नाजायज लाभ उठाये जाते है — सभी का वास्तवपूर्ण, बेबाक चित्रण करण्ता है । भारतीय समाज व्यवस्था ने उसके हिस्से जो सडांध, गंदगी, अज्ञान, निर्धनता, अभाव, विवषता थोपी, उसकी अभिव्यक्ति दलित लेखक करता है । यहॉ 'सत्यम, शिवंम सुंदरम' का ढोल पीटा जाता है और उसी की आड में दलितों के जीवन से इन तत्वों को नादारद करने की व्यवस्था बनाई जाती है । इस संदर्भ में शरण कुमार लिंबाळे कहते हैं — '' 'सत्यंम शिवंम सुंदरम' में भेदभाव की कल्पनाएँ है, जिसके आधार पर आम आदमी का शोषण

हुआ है । मनुष्य सर्व प्रथम मनुष्य है, यही सत्य है । मनुष्य की स्वतंत्रता ही शिव है और मनुष्य की मनुष्यता ही सौंदर्य है । ''[३४]

दलित साहित्य में कुडे और गंदे पानी से भरे मुहल्ले, सुअरों और पालतु पशुओं की आवा — जाही, तंग गालियॉ, दडबेनुमा घर, मैला ढोते लोग, मरे पशुओं के मांस के लिए लडते लोग, शराब के नशे में धूत समुह, गंदगी — सडांध उठाते फटेहाल समाज का चित्रण है । किंतु यह ध्यान रखना होगा कि यह भारतीय समाज की असलियत और दलित समाज को वास्तविकता को बयान करने, दर्शाने के लिए नितांत आवश्यक है । वह केवल यहां परिवर्तन आने और लाने की भावना से यथास्थिति का चित्रण करता है । दलित समाज की खस्ताहाल, दयनीय स्थिति का चित्रण करने के पीछे लेखकों की भावना यह रही हैं कि तथाकथित सभ्य समाज इसे देखे, आत्माग्लानी से भरे और इसके परिवर्तन के लिए प्रयास करें तो दलित समाज अपनी हालात से लजाऍ, क्रोधित हो ओर अपनी उन्नति में जूट जाए ।

२.४.७ स्वाभिमान

स्वाभिमान अपने अस्तित्व और उसका मूल्य दोनों की परख की शक्ति प्रदान करता है । स्वाभिमानी व्याक्ति अपने आस—पास घटीत, स्वयं के संबंध मे घटित घटनाओं का मूल्यांकन अपने नफे—नुकसान मान — अपमान के परिप्रेक्ष्य में करता रहता है । परिणामतः वह अपने शोषण, दोहन के प्रति भी सजग रहता है । स्वाभिमान के अभाव में व्यक्ति, समाज किसी पशु मे कम नहीं । ठीक यही हालात दलितों के रहे । प्रचलित वर्चस्ववादी व्यवस्था ने पूरा ध्यान रखा कि दलितों मे स्वाभिमान का उदय न हो । इसीलिए उसे भाग्य के झांसे में फंसाकर उससे हीन — से — हीन कार्य करवाऍ और बराबर यह ध्यान रखा गया कि दलित रोटी की जरूरत

से उपर उठ न पाएँ । परिणामतः ज्ञान, स्वाभिमान, चेतना के अभाव में दलित समाज अपने शोषण हालात को अपनी नियती और उच्च वर्ग के अधिकार के रूप में देखता रहा । स्वाभिमान के अभाव में वह हर अन्याय सहता रहा, बिना किसी परहेज के, बिना किती विरोध के ।

अंग्रेजी शासन व्यवस्था में फुले, आंबेडकर के विचारों और शिक्षा के प्रचार – प्रसार से दलितों में स्वाभिमान चेतना जागृत होती है । दलितों एवं दलित साहित्य का संघर्ष इसी जागृत स्वाभिमान की परिणीति है। स्वाभिमान के चलते अब वह सही – गलत, उचित – अनुचित में भेद करने और अनुचित के खिलाफ संघर्ष के लिए स्वयं को तयार करने लगा । स्वाभिमान अहंकार न होकर अपने होने का गर्व, अपने अस्तित्व की पहचान है । यह अपने रौंदे जाने की प्रक्रिया के खिलाफ एक प्रतिकार है । दलित अब किसी भी हालात में अपने स्वाभिमान की रक्षा करना चाहते हैं । दलित साहित्य के पात्र अपने स्वाभिमान को बचाने की पूरजोर कोशिश करते हैं, भले ही इसके लिए विद्रोह करना पडे या आत्मत्याग । दलित साहित्य केवल दलित पात्रों का चित्रण नहीं करता बल्कि उनकी स्वाभिमान चेतना को प्रेरित करता है । उनमें जन्म ले रहे विरोध को दर्ज करता है । इसी लिए प्रेमचंद द्वारा दलित जीवन को ले कर लिखे सारे साहित्य को दलित साहित्य की कोटी में नहीं रखा जा सकता है ।

२.३.८ प्रतिबद्धता

प्रतिबद्धता से अभिप्राय रचनाकार के वर्ण्य विषय और निश्चित विचार धारा के साथ के जुडाव से है । प्रतिबद्धता व्यक्ति को निश्चित आचार – विचार, मान्यता से संबंद्ध करती है । प्रतिबद्धता से ही व्यक्ति, समाज की निष्ठा का पता चलता है, साथ ही उसकी विश्वसनीयता भी सिद्ध होती है । साहित्य में भी रचनाकार की निश्चित

वाद, विचार धारा से प्रतिबद्धता आवश्यक होती है । दलित साहित्य के संबंध में यह काफी विवाद का विषय बना कि गैर दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ' दलित साहित्य ' है कि नहीं ? यहॉ यह भी स्पष्ट यह भी होना चाहिए कि केवल दलित जीवन का चित्रण होने से कोई साहित्य दलित साहित्य नहीं होता । उसके लिए उस साहित्य एवं रचनाकार को प्रतिबद्धता संबंधित विचारधारा और मानयता से होनी चाहिए । यह प्रतिबद्धता भी रचानाकार नहीं स्वयं रचना बताएगी कि रचनाकार प्रतिबद्धता किस ओर है ।

दलित साहित्य के प्रतिप्रेक्ष्य में दलित और गैर दलितों की मान्यताएँ, श्रद्धा, विचार, कल्पना और तर्क सामान्यत: एक – दूसरे के विरोधी है । इसलिए यहॉ एक खतरा यह भी बना रहता है कि गैर दलित दलित जीवन का चेतना हीन, निष्क्रिय, नकारात्मक चित्रण करें जो साहित्य की विचारधारा के अनुकुल न हो । अत: प्रतिबद्धता का सवाल बडा बन जाता है । प्रतिबद्धता विषय की जानकारी, अनुभूतियों की प्रामाणिकता, निष्ठा, संवेदना की सत्यता इसके साथ ही रचानाकार की तादात्म्यता, जूडाव एवं उसका पक्ष निर्धारित करेगी । प्रतिबद्धता प्रभाव को ही बदल देती है – इसका प्रमाण है उत्तरी राज्यों में जहॉ रावण को खलनायक मान जलाया जाता है, वही दक्षिण के राज्य रावण को पूजते हैं । यह प्रतिबद्धता का सवाल है । रामायण में परंपरागत उर्चस्ववादी विचार धारा से देखे तो शंबूक हत्या जायज मानी जाएगी और सुधारवादी नजरिए से व्यक्ति स्वातंत्रता का हनन । प्रतिबद्धता देखने के नजरिय को स्प ट करती है । प्रतिबद्धता के कारण रचनाकार के रचना में संदर्भित वाद, विचार धारा के तत्व आ जाते हैं । वे वांछित परिवर्तन के लिए आग्रही होते हैं, जिनमें चेतना विद्यमान होती है । अत: साहित्य के निर्धारण में प्रतिबद्धता आवश्यक तत्व है ।

२.४.९ मुक्ति संकेत

दलित साहित्य मनोरंजन के लिए नहीं लिखा जा रहा है, न ही उसका उद्देश्य आनंदवाद है । यह साहित्य मनुष्य की मुक्ति का साहित्य है । इसलिए इस में साहित्य केवल स्थितियों का चित्रण करना अपेक्षित नहीं है । यह साहित्य जीवन के समस्याओं, उसके निराकरण का साहित्य है । अतः इस साहित्य में समस्या के साथ उसके समाधान भी आने चाहिए ।

दलित जीवन अनगिनत समस्यओं का भंडार है । कुछ अपने अज्ञान से उपजी है, तो कुछ सामाजिक व्यवस्था से पैदा हुई है, तो अधिकतर भाग्य और ईश्वर के आड में निर्माण की गई है । ये परिस्थितियॉ समस्या भी है और दलितों के शोषण का कारण भी है । सामान्य दलित व्यक्ति, समाज उच्च वर्ग के भाडयंत्र को समझाने की क्षमता नहीं रखता कुछ हद तक इन स्थितियों को वह अपनी नियती मान चुका है । अतः दलित लेखक और साहित्य का ये कर्तव्य बन जाता है कि वह उनका प्रतिनिधित्व कर दलितों के आत्मसंमान को तोडने वाली उच्चवर्ग की जादतियों का पर्दाफाश करें तथा दलितों को इनसे बचने, इनका विरोध करने के उचित तरिकों से परिचित कराएँ ।

असल में दलित साहित्य के उदय का मूल कारण है शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार । शिक्षा पाने के कारण ही डॉ. आंबेडकर के रूप में दलित नेतृत्व सामने आया । आज भी जो दलित वर्ग दलित समाज का नेतृत्व कर रहा हैं चाहे वह अधिवक्ता हो, लेखक हो, प्रोफेसर हो या प्रशासकीय अधिकारी ये वर्ग शिक्षा प्राप्त वर्ग है । शिक्षा के कारण ही यह वर्ग डॉ. आंबेडकर के विचारों को आत्मसात कर पाया और स्व उन्नति में जूट गया । दलित साहित्य में मुक्ति संकेत के रूप में सबसे महत्वपूर्ण तत्व है शिक्षा प्राप्ति । मुक्ति संकेत में लेखक दवारा समस्या का निदान

देना अपेक्षित है और दलितों की समस्या उसका अज्ञान और व्यवस्था के षडयंत्र को न समझना है ।

दलित साहित्य में मुक्ति संकेत अपेक्षित परिवर्तन का प्रतिनिधि है । दलित साहित्य सामाजिक परिवर्तन एवं सभी समाज तबकों को समान धरातल या बिना किसी विभेद कें लाने का अभिलाषि है । अतः इस परीवर्तन की दिशा में लेखक द्वारा सूझाए गए उपाय, दिए गए समाधान ही दलित साहित्य के मुक्ति संकेत हैं ।

२.४.१० समाता स्थपित करने का आग्रह

दलित जीवन ही कचोट रही है सामाजिक गैर बराबरी । भारतीय समाज व्यवस्था में बिना किसी ठोस कारण के मात्र शोषण एवं मक्कारी के चलते दलित समाज को सदियों से गुलाम बनाया गया । उसका जीवन अपमान, तिरस्कार एवं संताप से भर दिया गया है । समाज के हिन —से — हीन काम उससे करवाएँ गए । उसे छुना तक निषिद्ध कर दिया गया । समाज का सबसे हेय, उपेक्षित घटक दलित बन गया । दलित जीवन की त्रासदी का निर्माण गैरबराबरी की समाज व्यवस्था में निहित है, जिसे श्रम विभाजन का नाम तो दिया गया किंतु विकास के सारे रास्ते बंद कर दिए गये । परिणामतः दलित औरों के उपभोग के समाज जूटाते रहे और स्वयं दो वक्त की रोटी तक न जुटा पाए । इसलिए दलित समाज एवं साहित्य का आक्षेप सामाजिक गैर बराबरी पर रहा जिसका समूल उच्चाटन ही मनु यता का गौरव होगा ।

दलित साहित्य मनुष्य एवं मानवता की महत्ता का साहित्य है। वह व्यक्ति, समाज का वंश, परंपरा, जाति, वर्ग, धर्म, रंग आदि किसी भी प्रकार से किया गया विभाजन नहीं मानता । यह विभाजन हमेशा कुछ वर्ग के फायदे के लिए बृहद् समाज के शोषण का तरिका होता है और

दलित साहित्य किसी भी प्रकार के शोषण का विरोधी है । दलित साहित्य का अंतिम लक्ष्य है समता स्थपित करना, जिसमें सारे लोग समान हो और अपना जीवन अपनी इच्छानुकूल, किसी भी दबाव, डर, सामाजिक उॅच—नीचता के बगैर जी सके । दलितों के प्रेरणास्रोत बुद्‌ध, फुले, आंबेडकर का उद्‌देश्य भी समाताधिष्टित समाज स्थापना था । दलित साहित्य एक आंदोलन है । अत : दलित साहित्य में समता स्थापित करने का आग्रह होना अपेक्षित है ।

उपर्युक्त तत्व दलित जीवन को अपना उपजीव्य बनानेवाली रचना में किस पैमाने और किस प्रतिबद्‌धता के साथ आए हैं, यह देखने के उपरांत, उस रचना को दलित साहित्य की कोटी में रखना चाहिए । इसमें दलित और गैर दलित लेखका का मुददा गौण होना चाहिए । इस से समान ध्येय, उद्‌दिष्ट होने वाला वर्ग, दलित समाज एवं साहित्य के अभिष्ट प्राप्ति हेतु मददगार सिद्‌ध होगा । साहित्य का निर्धारण साहित्य के मानदंडों के आधार पर होना चाहिए अर्थात् दलित साहित्य के संदर्भ में लेखक दलित हो या गैर दलित, दलित जीवन उसकी रचना में भोक्तृत्व भाव से आए या साक्षित्व भाव से उनमें उद्‌देश्य और प्रतिबद्‌धता के धरातल पर समानता होनी चाहिए ।

संदर्भ

———————————————————

१. बहुजन साहित्य पत्रिका — प्रा. यशवंत वाघेला, पृ— १९

२. संस्कृत शब्दर्थ कौस्तुभ — सं. द्वारिकाप्रसाद ार्मा, पृ. ५२४

३. शिक्षार्थी हिंदी शब्दकोश — सं. डॉ. हरदेव बाहारी, पृ. ३८६

४. पाइअसदद महवे ;प्राकृत शब्दमहार्णव द्ध—सं. सेठ गोविंद, पृ. ४५७

५. निता संस्कृत डिक्शनरी — वेदप्रकाश ाास्त्री , पृ. १०४

६. व्यावहारीक हिंदी — अंग्रेजी कोश — सं. महेंद्र चतुर्वेदी , पृ.

७. आदर्श मराठी शब्दकोश — सं.डॉ. प्रल्हाद नरहर जोशी, पृ. ७६३

८. अभिज्ञनव मराठी—मराठी शब्दकोश —सं. द. ह. अग्निहोत्री, पृ १५८

९. नालंदा विशाल शब्दसागर — सं. नवलबी, पृ. ५६८

१०.बृहत् हिंदी कोश — सं. कालिका प्रसाद, पृ. ६०१

११. दलित साहित्य का सौंदर्य बोध — रामअवतार यादव, पृ. २७

१२.महाराष्ट्र मानस ;अंक अप्रैल,१९९०द्ध —सं.आत्माराम, पृ. २१

१३.दलित विमर्श — डॉ. नरहरीदास खेमदास वनकर, पृ. ३४

१४.दलित साहित्य:चिंतन के विविध आयाम—सं.डॉ. एन सिंह, पृ. ११

१५.हिंदी और मराठी दलित साहित्य : एक मूल्यांकन
—डॉ.सूनिता साखरे, पृ.१६

१६.दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र —ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. १४

१७.दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र —डॉ शरणकुमार लिंबाळे,पृ. ३१

१८.दलित साहित्य : एक आकलन — बाळकृष्ण कवठेकर , पृ. ०५

१९.कथाक्रम;अंक अप्रैल—जून,२००४—डॉ. जयप्रकाश कर्दम, पृ. ०९

२०.भारतीय साहित्य में दलित एवं स्त्री — से. चमनलाल , पृ. २०

२१.हिंदी दलित कथा—साहित्य अवधारणा और विधाएँ
—डॉ. रजतरानी 'मीनू' पृ.

२२.बृहद मराठी—हिंदी शब्दकोश—सं.गो.प. नेने, श्रीपाद जोशी पृ. ३१४
२३.हिंदी दलित कथा—साहित्य अवधारणा और विधाएँ
—डॉ. रजतरानी'मीनू' पृ.१८
२४.दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र—ओमप्रकाश वाल्मीकि,
पृ. २८—२९
२५.दलित साहित्य का सौंदर्य बोध — रामअवतार यादव, पृ. ८०
२६.दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र —ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. ३१
२७.हिंदी दलित कथा—साहित्य अवधारणा और विधाएँ—
डॉ. रजतरानी 'मीनू' पृ.
२८.मराठी दलित कविता और साठोत्तरी हिंदी कविता
—डॉ. विमल थोरात,पृ. ३७
२९.दलित साहित्य सृजन के संदर्भ — रमणिका गुप्ता , पृ. ४५
३०.दलित साहित्य का सौंदर्य बोध — रामअवतार यादव, पृ. १८८
३१.वही पृ. ८८
३२.वही पृ. ८८—८९
३३.वही पृ.
३४.वही पृ.

तृतीय अध्याय

ओमप्रकाश वाल्मीकि का कथा साहित्य : दलित जीवन के विविध आयाम

दलित जीवन त्रासद स्थितियों का भंडार है । शोषण के हर तरिके से उसका शोषण किया जाता है, जैसे शोषण की व्यवस्था का निर्माण ही दलित समाज की दूरावस्था के लिए किया गया हो । अज्ञान दलित जीवन का अविभाज्य अंग रहा और अज्ञान अपने साथ दु:ख, दयनीयता, दरिद्रता, भूख, गरीबी, शोषण, परावलंबित्व, लाचारी, हिनताबोध, अन्याय, अंधश्रद्धा, भाग्यवाद, दैववाद साथ लाता है, जो दलित जीवन की गलितगात्र वास्तविकता है । अज्ञान दु:खों और दुष्प्रियता की जननी है । दलित समाज पर सदियों से ज्ञान प्राप्ति की पाबंदियॉ लगाई गई और ज्ञान प्राप्ति के प्रयास को अपराध घोषित कर कठोर दंड विधान बनाए गए, जो अमानवीय और अप्राकृतिक थे । परिणामत: ज्ञान के अभाव में दलित समाज दु:ख और दुरावस्था को ही अपनी नियती मान बेठा ।

अंग्रेजी शासन व्यवस्था, शिक्षा के द्वार सभी के लिए खूलना, समाज सुधारकों द्वारा भारतीय समाज व्यवस्था की चिकित्सा, फुले – आंबेडकर द्वारा धर्म, समाज, इतिहास की व्याख्या करना, दूनियां से संपर्क एवं भारत के लिए संविधान के रूप में एक कानून व्यवस्था का निर्माण आदि के कारण दलित समाज स्वयं के बारे में सोचने के लिए मजबूर हुआ । डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने दलित अस्मिता को जगाया, विचार की वैज्ञानिकता प्रदान की, धर्म एवं संस्कृति के तिलस्म को तोडा और भारतीय समाज व्यवस्था की असलीयत का पर्दाफाश किया । परिणाम स्वरूप दलित समाज व्यक्तिगत एवं सामाजिक विकास तथा सममूल्यता के लिए संघर्ष करने लगा । वह यथासंभव, यथाशक्ति अपनी उपस्थिति दर्ज

करते हुए, व्यवस्था के विरोध में संलग्न हुआ और थोपी गयी व्यवस्था के पर्याय ढुंढने लगा ।

भारतीय ग्राम व्यवस्था सवर्ण, उच्च वर्गीय समाज के लिए भले ही आदर्श एवं स्वयंपूर्ण व्यवस्था रही हो किंतु दलित समाज के लिए भारतीय ग्राम किसी कारावास के कम नहीं थे । गांवों में व्यक्ति के मूल्य निर्धारण का मानक व्यक्ति के कर्म नहीं बल्कि जाति थी । यहॉ दलितों के हिस्से हर अभाव, हर शोषण, हर दूरावस्था, हर कष्ट तथा हर यातना को थोपा गया था और साथ में बंद किए गए थे मुक्ति के सारे द्वार । नरक की कल्पना गावों में दलित जीवन की वास्तविकता थी । इसीलिए आंबेडकर के अवाह्न पर दलित समाज गांव से शहर की ओर निकल पडा, जहां नए अवसर एवं नई संभावनाएॅ हिलोरे ले रही थी । ऐसा नहीं कि शहरों में दलितों के स्वागत हेतु मखमली कालीन बिछए गए थे बल्कि गांवों के मुकाबले शहरों में जातिभेद छुआ—छूत, जोर—जबरदस्ती कम थी या उनके स्वरूप गांवों जितने भयंकर न थे । शहरों में परंपरागत सेवा कार्यों के बदले नकद मजदूरी के काम थे । गांवो के स्थिर वातावरण में हर व्यक्ति की पहचान जाति थी किंतु शहरों में व्यक्ति के जाति को पहचानना मुश्किल था अतः शहरों का वातावरण गांवों के मुकाबले अधिक खुला, मुक्त और नई संभावनाओं से युक्त था ।

दलित शोषण, उत्पीडन, अत्याचार, दलितों के खिलाफ षडयंत्र, जालसाजी, दलितों की प्रतिभा, योग्यता, क्षमता को नकारना, दलितों में उभरती चेतना को दबाने का प्रयास करना आदि घटनाएॅ शहरों में भी होती है और गांवों में भी । लेकिन दोनों के स्वरूप में अंतर है । गांव जहॉ दांत निपोरते हुए, इन घटनाओं को अंजाम देना अपना अधिकार मानता है, वहीं शहर जाति, धर्म की श्रेष्ठता से आहत हो चोरी—छिपे, जालसाजी से इन घटनाओं को अंजाम देने की कोशिष करता है । शहर

और गांव के दलित उत्पीडन के अपने अलग तरिके हैं । इसीलिए इस विभाग में दलित जीवन स्थितियों को देखते समय उसे स्पष्ट रूप सें ग्रामिण जीवन और नगरीय जीवन — दो उपविभागों में विभाजित किया है। भारतीय समाज जीवन में नारी चाहे किसी भी वर्ण, वर्ग की हो, उसे दलित माना गया है किंतु इसके बावजूद सवर्ण और दलित नारी के जीवन में बहुत अंतर है, इसलित नारी जीवन को सवर्ण नारी जीवन एवं दलित नारी जीवन शीर्षकों मे रखा गया है ।

३.१ ग्रामीण दलित जीवन

गांवों का स्थिर वातावरण दलित शोषण, उत्पीडन के लिए अनुकूल वातावरण है, शायद इसी कारण सवर्ण समाज को गांव अधिक सुरक्षित एवं आदर्शवत लगते हो । गांवों में आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक सत्ता उच्च वर्ग के हाथ में होने के कारण वह जब चाहे तब दलितों पर कोडे बरसा सकता है । गांवों का संपत्ति हीन, अधिकार हीन दलित समाज पराश्रित जीवन जीने के लिए बाध्य है । गावों में अधिकतर जगह दलित अल्पसंख्या में है और सवर्ण बहुसंख्या में, साथ ही श्रेष्ठता भाव लिए; अत: दलितों के साथ जोर—दबरदस्ती, मार—पीट यहॉ नित्य का काम है । गांवों में अन्याय, अत्याचार के विरोध को सवर्णों दवारा अधिकार हनन के रूप में देखा जाता है, परिणामत: हर तरह से दलितों को दबाने का प्रयास किया जाता है । दलित साहित्य ने (दलित उत्पीडन की) इन स्थितियों को वाणी देते हुए भारतीय आदर्श समाज व्यवस्था को बेबाकी से अभिव्यक्त किया है । उनके ग्रामिण परिवेश को लेकर लिखे गए कथा साहित्य सें दलित जीवन के निम्न पहलु सजीवता के साथ अभिव्यक्त हुए हैं —

३.१.१ खस्ता हाल जीवन

अभावग्रस्त जिंदगी समाज व्यवस्था द्वारा दलित समाज को मिला उपहार है । खाने—पीने, पहनने— ओढने, रहने— सहने सारे अभाव दलित जीवन का अभिशाप है । हाड तोड मेहनत के बाद भी दो वक्त की रोटी न मिलना दलित जीवन की सच्चाई है । फटे कपडे, नंग—धडंग बच्चे, झूर्राये चहरे, हड्डी से चीपकी चिमडी, उदास—मायूस निगाहे, पीठ को छूते पेट दलितों के खसता हाल जीवन की निशानियॉ है । केवल सेवा कार्य एवं हीन समझे जानेवाले कार्य करने के लिए दलितों पर जोर — जबरदस्ती की गई धार्मिक अंधविश्वास के चलते उन्हें विश्वास दिलाया गया कि उनका जन्म ही इसीलिए हुआ है । संपत्ति एवं संपत्ति के साधनों से बेदखल करने से दलितों का जीवन दयनीय एवं अभावग्रस्त बना । समाज व्यवस्था ने दलितों की प्राथमिक आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं होने दिया बल्कि उन्हें बद— से— बदतर हालातों में रहने के लिए मजबूर किया । ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' इस बात का सबुत है कि समाज व्यवस्था, तथाकथित उच्चवर्ग ने दलितों को इंसान के रूप में जीने तक की सहुलीयत नहीं दी । घर के तीन—चार लोग काम करते थे लेकिन घर में खाने के लाले थे, ओढने के लिए ढंग के कपडे न थे, कच्चा घर बरसात में चूने लगता, लोगों की जूठन खानी पडती, बेगार करना पडता ।

' सलाम ' संग्रह की ' बैल की खाल ' कहानी के पात्र काले आर भूरे के खस्ता जीवन का चित्रण करते हुए वाल्मीकि लिखते हैं — '' उनके चहरे बुझे हुए और ऑखें गड्डों में घॅसो हुई थी । सख्त हाथों की हथेलियॉ चौडी और मांस विहीन थीं । जिससे हाथों की नसे और अधिक उभरी हुई दिखाई पडती थीं । दोनों ने घुटनों तक मटमैली सफेद धोती का टुकडा लपेटा रखा था । कमर से उपर कमीज की जगह पुराने किस्म की बंडी नुमा चीकट बनीयन पहन रखी थी । जिसमें जगह — जगह

छेद हो गए थे । ''[१] काले और भूरे का उपर्युक्त जीवन ही दलितों के हिस्से लादा गया और वह बराबर बना रहे, इसकी व्यवस्था बनाई गयी ।

३.१.२ अज्ञान

दलितों के दुर्गति का कारण अज्ञान है । ज्ञान के अभाव में वे स्थितियों एवं उच्चवर्ग के भाडयंत्र को सही रूप में समझ ही नहीं पाए । अज्ञान सही — गलत की परख की ाक्ति को क्षीण कर देता है । दलित वर्ग सदियों से अज्ञान के अंधकार में भटकता रहा और धर्म, जाति, पीप—पुण्य, जन्म—प्रारब्ध, कर्म, पुनर्जन्म, भाग्य — भगवान के कल्पनाजन्य मोहजाल में गोते लगाते रहा । अज्ञान के कारण ही अपने साथ होने वाले अन्याय, अत्याचार, शोषण, छलावे को अपनी नियती मानने लगा । दलितों के दलित होने का कारण ही अज्ञान है, इसीलिए व्यवस्था ने दलितों को ज्ञान क्षेत्र अर्थात् शिक्षा के अधिकारों से वंचित रखा । दलितों के दलित होने का कारन बताते हुए महात्मा ज्योतिबा फुले कहते हैं —

'' विद्‌ये विना मति गेली
मति विना नीति गेली
नीती विना गति गेली
गति विना वित्त गेले
विता विना शुद्र खचले
एवढे अनर्थ एक अविद्‌येने केले ''[२]

महात्मा फुले शुद्र अर्थात, दलितों के दूर्दशा का एकमात्र कारण अज्ञान ही मानते हैं । अज्ञान के कारण व्यक्ति कई समस्याओं, परेशानियों, भाडयंत्रों का शिकार होता है । अज्ञान के कारण ही ' बैल की खाल ' कहानी के काले — भूरे पंडित बिरज मोहन के मरे हुंए बैल को पंडित की गालियॉ खाकर भी खींचने चले जाते हैं, जब कि जरूरत

पंडित को अधिक है । अज्ञान के कारण ही ' पच्चीस चोका डेढ सौ ' कहानी के सुदीप के पिताजी पच्चीस चौका सौ की बजया डेढ सौ मानते हैं और अज्ञान के करण उनका आर्थिक शोषणा होता है । अज्ञान ही है वह जो दिनभर खटने के बावजूद दलितों को दो वक्त की रोटी मथ्यस्सर नहीं होने देता । अज्ञान के चलते दलित स्वयं की क्रिया – प्रति क्रियाओं की चिकित्सा नहीं कर पाते । ' जिनावर ' कहानी का जगेसर चौधरी के कहने पर दलितों को पीटता है, उसके गलत कामों को अंजाम देता है । जगेसर के बारे में लेखक कहता है – '' उसे तो कभी पता भी नहीं चला कि बापू ने ऐसा क्या कर्ज लिया था जो उम्र भर की गुलामी उसके हिस्से में आई थी । अब तो वह चौधरी से अलग कुछ भी सोच नहीं पाता है ।''[३]

अज्ञान के कारण ही दलित अपने उपर होनेवाले अन्याय का विरोध तक नहीं कर पाए और न ही अपने मानवीय अधिकारों की मांग कर सके ।

३.१.३ भूखमरी

किसी भी सभ्य, विकसित समाज, देश के लिए अपने ही किसी अंग का भूखा रहना सबसे बडी गाली है । भूख मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता में भी प्रथम पायदान पर है । किसी समाज, व्यक्ति को उसके पेट की आग बुझाने का भी अवसर न देना पशुता से भी विकृत अवस्था है और यह प्रवृत्ति भारतीय समाज व्यवस्था के प्रस्थापित वर्ग में कुट–कुटकर भरी हुई पाई जाती है । दलितों के हिस्से काम ही ऐसे दिए गए, जिसका मेहनता बासी रोटी के रूप में दिया गया । काम तो उसे उसकी शारीरिक क्षमता से अधिक दिया गया किंतु इस बात को नजर अंदाज किया गया कि उसे भी पेट है जो रोटी मांगता है । भारतीय समाज के इस निर्दयी व्यवहार के कारण ही दलित समाज मरे हुए जानवरों का मांस खाने के लिए बाध्य

हुआ । मराठी के वरिष्ठ समीक्षक सुर्यनारायण रणसुभे लिखते हैं — '' भूख के अलावा और किसी भी प्रकार की जरूरत को दलितों में उभरने ही नहीं दिया गया था । श्रम और भूख तथा भूख और श्रम, यहीं तक इनकी जीवन यात्रा को सीमित कर दिया गया था । ''[४]

कमाई के उचित अवसरों के अभाव में दलित रोटी को मुहताज हुआ । वह गांव के जमींदार, ठाकुर, उच्चवर्ग के घरों, खेतों में काम तो करता है , इसके बावजूद अपने परिवार का पेट नहीं पाल सकता। दलित महिलाएँ दलित पुरषों के कंधे — से — कंधा मिलाकर काम करती है फिर भी परिवार के लिए दो वक्त की ढंग की रोटी का जूगाड नहीं कर पाती । ओमप्रकाश वाल्मीकि के माता–पिता, भाई गांव के उच्चवर्ग के घरों, खेतों में काम करते रहे पर परिवार के उदर –भरण की समस्या बनी रही । 'खानबदोश' कहानी के सुकिया और मानो रोटी के तलाश में ही गांव से ईंटे पाथने के भट्टे पर आए थे । ' बैल की खाल ' कहानी के निम्न संवाद काले –भूरे की रोटी कि चिंता को व्यक्त करते हैं —

'' काले ने गोधन को जाते देखकर भूरे से कहा, ' क्या टेम आ गिया है । इब तो ढोर डांगर बी ना मरते,

जिबते यो जिनावरों का डॉक्टर गॉव में आया है म्हारे तो पेट पर ही लात मार दी है सोहरे ने । ''[५]

उपर्युक्त संवाद दलितों में व्याप्त भूख की समस्या को उद्घाटित करते ही है साथ में उनकी मरे हुए पशुओं का मांस खाने की मजबुरी को भी दर्शाता हैं । गावों में दलितों को श्रम के बदले नकद मुआवजा न देने के चलन के कारण दलित भूख की समस्या से बहुत अधिक पीडित रहें ।

३.१.४ परिश्रम

इच्छा से या अनिच्छा से जैसे भी हो दलितों को परिश्रम करना ही है । परिश्रम से मुँह मोडने की सहुलीयत दलितों को है ही नहीं। ' कमाओं तब खाओं ' के हालात ने दलितों को शारीरिक श्रम करने के लिए मजबूर किया । उत्पाद के साधन और अज्ञान क्षेत्र से निष्कासित दलितों के हाथों पेट भरने का एक मात्र साधन है — परिश्रम । लेकिन दु:ख की बात यह है कि उन्हें उचित मेहनताना नहीं दिया गया । कोशिश यह रही कि दलितों से अधिक — से — अधिक काम लिए जाए, शरीर को इतना थकाया जाए कि दिमाग को सोचने का मौका ही न मिले । किसी भी भाषा के दलित साहित्य को देखने पर हम पाएंगे कि गंदगी उठाना, पशुओं की देखभाल करना, खेती के काम करना, घरों में चाकरी करना आदि परिश्रम के काम दलित करते रहे लेकिन मुआवजे में उन्हें घुडकियॉ, गालियॉ, घृणा—तिरस्कार, मारपीट और जूठन मिली ।

' खादाबदोश ' कहानी के सुकिया और मानों ईंट भट्टे पर मेहनत करते हैं तो ' यह अंत नहीं ' कहानी के मंगलू, सरबती, बिरमा चौधरी तेजभान के खेतों पर काम करते हैं । ओमप्रकाश वाल्मीकि फौजासिंह के खेत में जबरदस्ती काम करने के लिए मजबूर है तो काले — भूरे पंडित बिरज मोहन का । ' अम्मा ' कहानी की अम्मा कई घरों में गंदगी साफ करने का काम करती है । ' रिहाई ' कहानी के सुगनी और मिट्ठन परिश्रम करते — करते ही मौत के मुँह में ढकेल दिए जाते हैं । उनके लिए लाला के जोर — जबरदस्ती और घुडकियों से मुक्ति का कारण मृत्यु बनी । हाडतोड मेहनत करने पर उच्चवर्ग की शोषण प्रवृत्ति कभी संतुष्ट नहीं हुई । लाला कहता है, '' मैं सब जानता हूँ .... मुफ्त की रोटी खाने की आदत पड गई है ... दिन भर खाओ ... काम धंदा तो कुछ है

नहीं ... जब काम पडे तो बहाने करके लेट जाओ ''[६] जब कि सच्चाई यह है कि काम की अधिकता से मिट्ठन की मौत हो जाती है ।

३.१.५ दयनीयता

जमीन — जायदाद, उत्पाद के साधन, शिक्षा की पांबदी और सामाजिक बही कार के कारण दलित समाज पूरी तरह उच्च वर्ग पर आश्रित रहा । हर जगह से, हर तरिके से उसे प्रताहित किया गया । उसके प्रतिक्रिया को बगावत के रूप में देखा गया और उसकी जबरदस्त किमत वसूली गयी । हालात के इस जर्जरता ने दलितों को असहाय, दयनीय बना दिया । जीदंगी पूरी तरह से उच्च वर्ग के रहमों — करम पर होने के कारण दलित समाज दयनीयता को ही समर्पण के रूप में देखना लगा और उच्च वर्ग को खूश करने, पेट भरने, बाल — बच्चो के खातीर वह 'जी — हुजूरी' करने लगा । उत्क र्ा के सारे रास्तों पर पाबंदी थी, विरोध की सजा व्यक्तिगत के बजाय सामुहिक दी जाती, घर में लोग है, भूख है, पर खाना नहीं ऐसे हालात में कोई समाज, व्यक्ति टूट ही तो सकता है और यह टूटना उसके चहरे पर, स्वभाव में दयनीयता लाता है । धारण यह बन जाती है कि हात्यारे के सामने दयनीय होने से शायद बचने के असार दिखाई दे किंतु दलितों की यह धारणा भी बेकार ही रही ।

' रिहाई ' कहानी के सुगनी और मिट्ठन के चहरे और स्वभाव में से दयनीयता झलकती है । हालात ने उन्हें इतना मजबूर किया है कि वे लाला के सामने हाथ जोडते हैं, गिडगिडाते हैं पर लाला को रहम नहीं आता । ' सलाम ' कहानी के ससूर जुम्मन गांव के चौधरी बल्लू रांघड के सामने गिडगिडाकर, रिरियाहट भरे स्वर में कहता है, '' चौधरी जी, मेरी लाज रख लो ... मैं तो थारा गुलाम हुँ ... मेरा तो जीना — मरना सब कुछ थारी ही गेल है । जो कहोगे करूँगा ... बस करके बेटी कू

विदा हो जान दो । मैं थारे पॉव में नाक रगडूँ....'' [७] जूम्मन के बातों से सीध — सीधे उसकी दयनीयता झलकती है । गंवों में दलितों पर अन्याय — अत्याचार करने की खूली छुट होने के कारण तथा अभावों के कारण दलित करते भी तो क्या करते ? यहीं दयनीयता ' हत्यारे ' कहानी के कालू के चहरे पर है और ' पच्चीस चौका डेढ सौं ' कहानी के सुदीप के पिता के चहरे पर । यहीं दयनीयता ओमप्रकाश वाल्मीकि के पिता के चहरे पर दिखाई देती है ।

३.१.६ अंधविश्वास

भारतीय समाज व्यवस्था का मूल अंधश्रद्धा है या अंधश्रद्धा के भ्रमित करने वाले तर्क पर ही भारतीय समाज व्यवस्था आकार लेती है। जन्म की वैज्ञानिक धारणा को नकारते हुए भारतीय सभ्यता ने उसे प्रारब्ध से जोडा अर्थात् पूर्व जन्म के पाप या पुण्य के अनुसार जीव को निश्चित योनी में स्थान दिया जाता है — यह धारण दृढ की, जिस कारण जो है उसे स्वीकारने की अनिवार्यत: स्वत: निर्माण हुई । व्यक्ति के बीमारी, उसके साथ धटित होनेवाली घटनाएँ, प्राकृतिक अवदाएँ, परिवारिक स्थिति, जमीन — जायदाद के मसले आदि का संबंध भाग्य, भगवान, प्रारब्ध से जोडा गया और उससे मुक्ति के कारक के रूप में भी भगवान संतुष्टि की बात कही गई । हर समाज, वर्ग को अलग — भगवान और उसे संतुष्ट, प्रसन्न करने की अलग — अलग रीतियॉ चल निकली । भगवान के अनुकूल समाज होना चाहिए था लेकिन यहॉ समाज के अनुकूल भगवान बने । समाज शाकाहारी — भगवान शाकाहारी, समाज शराबी — भगवान शराबी, समाज विकृत — भगवान भी उसी के समान । खास बात यह कि यह अलिखित नियम बना कि श्रद्धा, धर्म के सामने तर्क नहीं, चाहीए । वह श्रद्धा, अंधश्रद्धा हो या धर्म, अधर्म की राह पर चले लेकिन तर्क

नहीं करना है केवल स्वीकारना है ; जो भी है, जैसा भी है । माना गया कि मनु य जन्म बडे पुण्य से मिलता है लेकिन यह नहीं बताया कि पुण्य से मिले दलित समुदाय के मनु य जन्म को इतनी यातनाएँ, पताडनाएँ क्यों ?

भारतीय परिप्रेक्ष्य में धर्म, भगवान, भाग्य तथा श्रद्धा पर सत्ता ब्राहमण वर्ग की रही । उसके कहने के अनुकूल ही अन्य वर्ग के हिस्से भगवान, श्रद्धा तथा पूजा विधियॉ आयी । दलित समाज जो अज्ञानी था, उसने इसे अपने मुक्ति के राह के रूप में जाना और वह अंधानुकरण में जूटा । दलित समाज में अंधश्रदधा का ऐसा प्रचार – प्रसार किया गया कि उनके लिए सभी समस्याओं का निराकरण, खुशी – गम का प्रकटीकरण , बीमारी का इलाज भी अंधश्रद्धा को ही माना गया ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि आत्मकथा ' जूठन ' में कहते हैं, अंधश्रद्धा इतनी थी कि हर समस्या का समाधान सुअर की बलि माना जाता था । इसी कारण वाल्मीकि समाज में सुअर की अपनी महत्ता थी, '' सुअर हमारी जिदंगी का एहम हिस्सा थे । शादी – ब्याह, हारी – बिमारी, जीवन – मृत्यु सभी में सुअर की महत्ता थी । यहॉ तक कि पूजा अर्चना भी सुअर के बिना अधुरी थी । ''[८] लेकिन ध्यान देने लायक बात यह है कि सुअर की महत्ता से तात्पर्य उसकी बलि चढाने से है । ' हत्यारे ' कहानी का सलेसर बिमार हो जाता है, भगत सूरजा गरमी लगे सलेसर को इलाज के लिए भेजने के बजाय उसके पिता कालू से देवता को सुअर की बलि चढाने को कहता है । सुअर की बलि तो चढती है लेकिन सलेसर ठीक नहीं हो पाता । ' भय ' कहानी के दिनेश की मानसिक स्थिति अंधश्रद्धा के चलते किए गए पूजा के कारण बिघड जाती है, वह जाति छिपाकर रह रहा था और पूजा के तौर – तरिकों से यह भेद खूलने का डर था, अत:उसका तानसिक संतुलन बिघड जाता है ।

३.१.७ छुआ — छूत

छुआ — छूत न केवल दलित समाज बल्कि भारतीय समजा व्यवस्था का भयानक कोड है । एक आदमी दुसरे आदमी के स्पर्श से कतराता है, उसे ऐसे स्पर्श से धर्म भ्रष्ट होने का डर है । ऐसा होने पर वह या तो स्पर्श करनेवाले को बेदर्दी से पीटता है या स्वयं को पवित्र करने के लिए गंगाजल या गोमुत्र छिडकता है । छुआ — छूत उच्च वर्ग के मन में पल रहे तिरस्कार, घृणा का परिचयक है । कितना दूर्भाग्य पूर्ण है कि भारत का यहीं उच्च वर्ग ' वसुधैवकुटुंबकम ' की बात करता है । इसीलिए डॉ. बाबासाहेब उच्च वर्ग की प्रवृत्ति पर प्रहार करते हुए कहते हैं, इन्हें जानवरों को छुने, उनके मल—मूत्र को पवित्र मानने में हर्ज नहीं है, बस दलितों को छुते ही इनका धर्म भ्रष्ट हो जाता है ।

वर्तमान समय में छुआ — छूत पहेल जैसी कट्टरता से नहीं निभाई जाती किंतु उसका अस्तित्व समाप्त हुआ है ऐसा नहीं कहा जा सकता । पूजा — अर्चा, धार्मिक अनू ठानों मे छुआ — छूत को स्प टता से देखा जा सकता है । यह कुछ हद तक दलितों में हेा रहे आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन का भी परिणाम है । गांवों में भी छुआ — छूत अब कम हो रही है लेकिन मन का मैल मिटता दिखाई नहीं दे रहा है । ओमप्रकाश वाल्मीकि के मास्टर उन्हें पानी लाने के लिए कहते हैं लेकिन उनकी जाति का पता चलने पर रोक देते हैं । स्कूल के सहपाठी हैंडपंप को छुने पर पीटाई करते हैं । इतना ही नहीं मास्टर बृजपाल के कहने पर मित्र भिक्खूराम के साथ वे उनके गांव गेंहू लाने गए थे किंतु उनकी जाति का पता चलने पर उनके साथ छुआ — छूत बरती जाती है । ' सलाम ' कहानी में हरीश की शादी में आया दीपू नाम का लडका मुसलमान के हाथ की बनी रोटी खाने से इनकार करता है, '' नहीं ... नहीं, मैं मुलसमान के हाथ की बणी रोट्टी नहीं खाऊॅगा ... नहीं खाऊॅगा .

.. नहीं खाऊँगा । ''[९] ओमप्रकाश वाल्मीकि ने यहाँ जाति भीतर और धर्म भीतर व्याप्त छुआ — छुत को उजागर किया है ।

३.१.८ उपेक्षा

दलित समाज अन्य समाज तबकों के नजरिए में उपेक्षा का पात्र रहा । उसके किसी भी अच्छे — बूरे काम को नकारात्मक नजर से देखा गया । सामाजिक जीवन उपेक्षा और बहि कार से भरा था, साथ ही सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा अन्य क्रिया — कलापों में भी दलित समाज उपेक्षित रखा गया । उपेक्षा की चरम सीमा थी—' छुआ — छूत '। व्यक्ति, समाज को हतोत्साहित करने का आसान तरिका है — उपेक्षा । उसके किसी भी कार्य पर, विचार पर, हरकत पर ध्यान न देना या उसको गलत करार देना । दलित समाज के साथ यहीं किया गया । एक तो शिक्षा, संपत्ति से वंचित कर उसकी उपेक्षा की, दूसरे सामाजिक कानून के चलते उस पर ऐसी पांबदियाँ लगायी कि व्यक्ति, समाज के रूप में उसका व्यक्तित्व निर्माण न हो सके । उच्च वर्ग द्वारा बनायी गयी पटरी से बाहर चलना या सोचना दंड का कारण बना तथा नव निर्माण के अभाव में दलित समाज इतिहास, धर्म, संस्कृति के परिधि से उपेक्षित कर दिया गया ।

' यह अंत वही ' कहनी की बिरमा को पंचायत उचित न्याय न देकर उसकी उपेक्षा करती है । ' सलाम ' कहानी के बल्लू रांघड हरीश की योग्यता, उच्च शिक्षित होने की उपेक्षा करते हुए उसे सलाम पर भेजने की जीद करता है । उसके नजर में दूल्हें का सलाम पर न आना उसकी उपेक्षा है । उपेक्षा को दलितों में पनपने वाले आत्मविश्वास को तोडने के लिए प्रयुक्त किया गया । 'जूठन' आत्मकथा में सूरजभन तगा का बेटा बृजेश जो ओमप्रकाश वाल्मीकि का पढना, होशियार होना सह नहीं पाता । वह बेवजह झगडा करते हुए कहता है, ''कितना भी पढ लियो, रहेगा तो

चुहडा ही ...''[१०] हिरम सिंह की शादी में ' मोरना ' जाने पर सलाम के लिए निकले हिरम के साथ ओमप्रकाश भी है, हिरम की सास जिस घर कमाई करती थी वहा की ओरतें भी दोनों की शिक्षा के बारे में पूछकर कहती है, ''कितना बी पढ लो .... रहोगो तो चुहडे ही ''[११] अर्थात् दलितों के विकास, शिक्षा, योग्यता को उपेक्षित कर उसके जाति के आधार पर उसे नीचा दिखाने का करतब होता रहा है । दलितों द्वारा शिक्षा ग्रहण करना अधिक उपेक्षा का कारण रहा क्योंकि उच्च वर्ग दलितों के शिक्षा प्राप्ति के विश्वास को तोडना चाहता था, जो उसकी सुविधा भोगी वयवस्था के सामने खतरा खडा कर रही थी ।

३.१.९ रूढि — परंपरा — उत्सव

दलित समाज से जूडे रूढि, परंपराएँ तथा उत्सव दलित सुदाय को नीचा दिखाने का सांस्कृतिक करतब है । जरूर ये प्रथाएँ भी उच्च वर्ग के दिमाग की ही उपज होंगे । दलितों को जलील करने का एक भी मौका तथाकथित उच्च वर्ग ने नहीं छोडा । भारत के चार प्रमुख उत्सवों में जिस उत्सव में मद्य — मांस तथा हुल्लडबाजी है, वह उत्सव दलितों के माथे थोपा । भूख और सामाजिक समस्याओं से परेशान दलित वर्ग को रूढि, परंपराएँ, उत्सव हिंदू धर्म एवं संस्कृति से विरासत में मिले और वे अधिकतर भीक मांगने, जलील होने, अपनी दयनीयता को प्रदर्शित करने या अपनी ही विरासत के खिलाफ वह अज्ञानवश उठाने, क्रिया करने के फिराख में पाया जाता है ; जैसे हिंदू धर्म के तकरिबन सारे रीति — रिवाज, परंपराओं, उत्सवों को दलित समाज मनाता है, लेकिन उसमें से कई उत्सव दलितों के पराजयों के उत्सव हैं, जिसे दलित अज्ञानवश उसकी असलीयत नहीं जानते और उन्हें धुमधाम से मनाते हैं ।

' सलाम ' कहानी में सलाम की अनिष्ठ परंपरा का जीक्र किया है, जिसमें दलित दूल्हा या दुल्हन सवर्णों के घर सलाम करने अर्थात् माथा नवाने जाता है । यह एक अपमान जनक प्रथा है, लेकिन इसका समर्थन बडे उदार ढंग से किया जाता है कि इसी बहाने नव दांपत्या को कपडा — बर्तन मिल जाते हैं । सलाम कहानी का हरीश सलाम के बारे में कहता है,'' आप चाहे जो समझें ....मैं इस रिवाज को आत्मविश्वास तोडने की साजिश मानता हूँ । यह ' सलाम ' की रस्म बंद होनी चाहिए । '' [१२]

' सलाम ' कहानी संग्रह की ' ग्रहण ' कहानी में चंद्र ग्रहण के अवसर पर दलितों द्वारा सवर्णों के घर अनाज मांगने की प्रथा का जीक्र किया है । ग्रहण आरंभ होते ही रात के डेढ दो बजे दलित बस्ती के बच्चे, बुढे, जवान लडकियॉ, बहुऍ भी अनाज मांगने निकल पडती थी । बात यह भी की ग्रहण लगना राक्षसी प्रवृत्तियों का बढना माना गया और उससे मुक्ति हेतु दलितो में अनाज बांटना कहा गया । इस परंपरा में कहीं — ना — कहीं दलितों को राक्षस कूल का माना जाना अभिप्रेत है, तभी तो अनाज दलितों में बांटा जा रहा है । इस प्रकार दलितों की रूढि, परंपराऍ, उत्सव उनके अभाव को ही उजागर करते हैं ।

३.१.१० व्यवनांधता

अज्ञानी दलित समाज में व्यसनांधता पाई जाती है । दबे — कुचले, पराजित, उच्च वर्ग की ज्यादती और लानतों से परेशान दलित वर्ग इससे मुक्ति की काल्पनिक कल्पना के चलते — व्यवनांध होता गया । स्थितियॉ चाहे जो भी हो लेकिन व्यसनांधता स्वयं को ही लेकर डूबती है । भले ही मनोविज्ञान का आधार लेकर दलितों में व्याप्त व्यसनांधता का कुछ हद तक समर्थन किया जाए लेकिन इससे नुकसान तो दलित समाज का ही हुआ हैं । दलितों में पाए जाने वाले कई व्यसन उच्च वर्ग का अनुकरण

है किंतु उसकी उचित मात्रा एवं गुणवत्ता दोनों से दलित अपरिचित है या उसके हैसियत से बाहर है । शराब उच्च वर्ग के लोग भी पीते है किंतु दलित कच्ची शराब पीते है, जो बेहद हानीकारक है । समाज व्यवस्था ने दलित समाज के बरबादी में कोई कसर नहीं छोडी, बची — खूची उम्मीद भी व्यसनांधता ने बिघाड दी । दलितों के उत्सव , त्योहार आदि में मांस तथा राब की अनिवार्यता दलितों में व्याप्त व्यसनांधता का प्रमान है ।

‘ अम्मा ’ कहानी का शिवचरण अम्मा को सफाई देते हुए दलितों की बिघडती स्थिति को उजागर करते हुए उनकी व्सनांधता की बात करता है, ‘‘ अम्मा ! दुर्दशा तो ये लोग अपने आप करें है । दो पैसे घर ले जाने के बाजाय दारू पीते हैं । सट्टा खेलते हैं । ’’[१३] लेकिन अम्मा उसके भी दारू पीने को अडे हाथ लेती है । ‘ जूठन ’ आत्मकथा में शादी — ब्याह, पूजा —अर्चा के समय सुअर की दावत के साथ कच्ची शराब के प्रसंग भी आए हैं । ‘ हत्यारे ’ कहानी में बीमार सलेसर के दुरूस्ती के लिए जो पूजा की जा रही है उसमें भी गोश्त और राब का बोलबाला है । पूजा के प्रसाद का साहित्य है, ‘‘ .... रोटियों पर सूअर का पकाया हुआ मीट रखा गया था । बताशे, शराब की दो बोतल । ’’[१४] यानी अपने व्यसन को ही यहाॅ प्रसाद बनाया गया है । दलित लेखकों ने दलितों में व्याप्त व्यसनांधता का चित्रण तो किया लेकिन उसके दुष्परिणमों पर भी ध्यानाकर्ि ति किया है ।

३.१.११ लाचारी

लाचारी दलित जीवन की विशेषता बनती जा रही थी । मुर्झाये चहेर का, झूकी गर्दन का, लाचार व्यक्ति दलित है । कुछ न कर पाने की मजबूरी, पराश्रित भाव, अधिकार हीनता, अपने परिवार के भरण — पोषण की असमर्थता ने दलितों को लाचार बनाया । दलितों के हाथ में

कुछ भी न था । सत्ता, संपत्ति, जमीन, शिक्षा सारे के सारे उच्च वर्ग की बपौति थे । परिश्रम कर पेट भरने में भी दिक्कत यह थी कि परिश्रम के अवसर भी उच्च वर्ग के शिकंजे में कैद थे । जीने के लिए पेट भरना जरूरी है और पेट भरने के लिए दलित लाचार थे । भारतीय समाज व्यवस्था के इस घिनौने रूप ने दलितों को घोर निराश एवं लाचार बनाया । उनके सामने पेट का सवाल ही इतना बडा था कि सर उठाने का अवसर तक उनके पास न था । सत्ता ओर संपत्ति धारक उच्च वर्ग ने दलितों को बांसी रोटी के मुआवजे पर काम दिए जो उनकी लाचारी, दयनीयत प्रकट करते है । परिणामत: अभावग्रस्त दलित अत्याधिक लाचार बनता गया ।

आत्मकथा ' जूठन ' में स्कूल जाते ओमप्रकाश को आर्थिक तंगी के चलते, लाचार होकर बैल की खाल उतारने चाचा के साथ जाना पडता हैं । सहपाठियों के देखने, चिढाने का डर था लेकिस समाज के हाथों, आर्थिक रूप से ऐसे लाचार थे कि उसे छोडकर भाग भी नहीं सकते थे । ' बैल की खाल ' कहानी के काले और भूरे घर के तंगहाली से इस कदर लाचार हुए थे कि पंडित बिरज मोहन की गालियों के बावजूद वे पंडित के मरे हुए बैल को कुए के पास से हटाते हैं ।' ग्रहण ' कहानी में फांकों से लाचार हुए दलित ग्रहण के अवसर पर सवर्णों के दरवाजों पर अनाज मांगने के लिए मजबूर हैं, '' सॉझ होते—होते बस्ती के लोग एक जगह इकट्ठे होने लगे । बच्चे, बूढे यहॉ तक कि जवान लडकियॉ, बहुऍ भी निकल आई थीं । फाकों ने सभी को लाचार बना दिया था। ''[१५] ' बिरम की बहू ' कहानी भी जनेसर की पारीवारिक लाचारी को व्यक्त करती है । काम न होने से तथा घर में अनाज, पैसे न होने से जनेसर के घरवाले जूठन में मिले टूकडे, पोटली से मिले पूराने चावल खाने के लिए अभिशप्त है । इस प्रकार भयंकर अभावों ने, जीने की लालसा में दलितों को लाचार बनाया ।

३.१.१२ जातिभेद

भारतीय समाज व्यवस्था की असलीयत है जातिभेद, जो समाज, समुदाय, वर्ग को एक नहीं होने देती । भारतीय समाज में जाति की इतनी पुख्ता दीवारे हैं, जो ढहने के बजाय दिन — ब — दिन मजबूत होती जा रही हैं । प्रस्थापित वर्ग के हाथ का यह वह अस्त्र जिसे वह अपने फायदे के लिए अपनी इच्छा के अनुकूल इस्तमाल करता रहा है । जाति या वर्ण निर्माण की प्रक्रिया को भले ही कर्म से जोडा गया हो किंतु असल में यह मजदूर निर्माण की प्रक्रिया रही । दलित समाज के बारे में यहीं सच है । जाति भारतीय समाज का मूल्य निर्धारक तत्व माना गया है, जिसके सामने व्यक्ति की प्रतिभा, बुद्धित्ता, क्षमता गौण हो जाती है । उच्च वर्ग ने अपना लोहा मनवाने के लिए कई बार जातियों के बीच सिर फुटवल किए हैं । जाति वर्चस्ववादी दिमाग की ऐसी उपज है जो कुछ विशेष वर्ग को विशे ा अधिकार प्रदान करती है और उसके बिना परिश्रम, सुविधाभोगी जीवन की व्यवस्था करती है तो बहुसंख्याक वर्ग को उनके सेवा कार्य में जोड देती है, जहॉ उनके अधिकार, इच्छा — अकांक्षा, आवश्यकताओं का संकोच होता है । जाति शोषण की व्यवस्था है जिसको अंजाम देने के अधिकार उच्च वर्ग हाथों में कैद हैं ।

' जूठन ' आत्मकथा में ओमप्रकाश अपने मित्र के साथ मास्टर बृजपाल के घर उनके लिए गेंहू लाने जाते हैं । उनका ठीक से आदर — सत्कार होता है किंतू जैसे ही उनके चूहडा होना का पता चलता है, मेहमानवाजी करनेवाले ही गालियों की बौछार करते हुए हाथापाई पर उतर आते हैं । अंबरनाथ में प्रशिक्षण के दौरान ओमप्रकाश की मिस्टर कुलकर्णी से अच्छी बनती है किंतु यहॉ भी कुलकर्णी परिवार समझ बैठा था कि ओमप्रकाश वाल्मीकि ब्राह्मण है । वे अपने यहॉ आए प्राध्यापक

को अलग कप में चाय देते हैं जिसे मिसेस कुलकर्णी हात भी नहीं लगाती; इसका कारण है, उसका निम्न जाति का होना । ओमप्रकाश द्वारा जाति बताने पर कुलकर्णी के परिवार से जूडा रिश्ता टूट जाता है । ' खानाबदोश ' कहानी का ठेकेदार असगर सिंह जातिभेद के शस्त्र का इस्तमाल करते हुए जसदेव से कहता है,'' अपने काम से काम रखों । क्यों इन चमारों के चक्कर में पडते हो । ''[१६] अब तक मानों और सुकिया के पक्ष में होनेवाले जसदेव को जाति के आधार पर उनसे तोडा जाता है, जो सुबेसिंह के कहने पर मानो को परेशान करना आरंभ करता है ।

जाति वह विष है, जो इंसान के मन में नफरत पैदा करता है और एक दुसरे को संदेह की निगाह से देखना आरंभ कहती है । जाति का पता चलने से पूर्व सारे इंसान है और उनके व्यवहार सहज – सरल है किंतु जाति का पता चलते हैं, वे दो गुटों में विभाजित होते हैं, दोस्त या दुश्मन ।

३.१.१३ उच्च वर्ग की ज्यादतियॉ

दलितों के साथ ज्यादतियॉ करना जैसे उच्चवर्ग ने अपना अधिकार जान लिया है । जस जरा सी बात पर गाली – गलौज करना, मारपीट करना, अपमानित करना, जाती का उल्लेख करना आम बात है । इसके पीछे केवल अपने उच्चवर्गीय होने के तुष्टी का भाव होता है । वहज बेवजए की गई यह ज्यादतियॉ प्रस्थपित वर्ग के विकृत मानसिकता का लक्षण है । दलितों के बढते कदम, उनके विकास, शिक्षा प्रति आदि को अवरिद्ध करने के लिए भी वर्चस्ववादी वर्ग ज्यादतियॉ करता रहा है । स्कूल जा रहे ओमप्रकाश के सुजमान तथा का बेटा बृजेश जो खेती के काम करता है, अपमानित करता है, उसके पेट में लाठी घूसेडता है और उसका झदेला किचड में फेंक देता है । बृजेश से ओमप्रकाश कोई दुश्मनी

नहीं लेकिन अपट ठाकूर दलित का पढना सहन नहीं का पाता और ज्यादति पर उत्तर माता है ।

' यह अंत नहीं ' कहानी का सचीन्दर जो गांव के चौधरी तेजमान का बेटा है दलित मंगलु के बेटी बिरमा पर ज्यादति करने की कोशिश करना है । ' जिनावर ' कहानी का जगेसर चौधरी के कहने पर निरपराध दलितों की धुलाई करता है । 'सलाम' कहानी का कलम उपाध्याय जो ब्रहमण है किंतु हरीश जो दलित है उसकी बरात में गांव आया है । असे दलित मान रामपाल धमकाता हुए कहता है, '' साने जबान सिभाल के बोल, गॉड मे डंडा डाल के उलट दूँगा । जाऐ जुम्मन चुहडे से रिक्षा बणा। इतनी जोरदार लौंडिया लेके जा रे हैं सहर वाले, जुम्मन के तो सींग लिकड आए है । अरे, लौंडिया को किसी गांव में ब्याह देता तो म्होर जैसों का भी कुछ भला हो जाता ... ''[१७] इस प्रकार दलितों के साथ की जानेवाली ज्यादतियों से सारा दलित साहित्य भरा पडा है ।

३.१.१४ व्यवस्थागत अन्याय

पीडितों के अन्याय निवारण के लिए पुलिस, प्रशासन, न्याय, संचार माध्यम, पंचायत आदि व्यवस्थाऍ बनाई गई हैं । इनके हाथों में संविधान द्वारा दिए गए अधिकार और कानून के विधान महफुज रख, समाज में व्यक्ति समनता की वकालत अपेक्षित है किंतु भारतीय समाज में जाति, धर्म का बोलबाल इस हद तक कट्टर है कि कायदे — कानून भी उसके सामने दम तोडने लगते हैं । पूलिस, प्रशासन, न्याय, संचार क्षेत्र में उचचवर्गीय समाज सदियों से कुंडली मारकर बैठा है । वह बातें तो न्याय, धर्म की करता है किंतु उसका उद्देश्य स्वजाति के हितों का रक्षण रहा है । अधिकारी वर्ग सवर्ण समाज के कहने पर दलितों के साथ अन्याय करते हैं। जहॉ से न्याय की उम्मीद की जाती है, वह व्यवस्था ही अन्याय में संलग्न

होने पर दलित न्याय मांगने के लिए कहा जाए । पूरी व्यवस्था ही जैसे घने बियाबान में बदल जाती है ।

ओमप्रकाश के गांव चकबंदी आई थी । सरकारी काम के सामय सरकारी मुलाजिम दलितों से काम तो लेते लेकिन मुआवजा नहीं देते थे । इस बार गांव के दलितों ने बेगार करने से मना किया । उन्हें धमकाया गया जब वे नहीं माने तब पंद्रह दिन बाद पुलिस आकर दलितों की पीटाई करती है। जो मिला उसे पीटा गया। उनका न कोई कसूर था, न कोई गुनाह । अपने अधिकारों के प्रति सचेत होने का यही सिला दलितों को मिला हैं ।

' यह अंत नहीं ' कहानी का किसन जो पढा लिखा युवक है, वह पीडित बिरमा का भाई हैं । बहन को न्याय दिलाने के लिए वह गांव के चौधरी के खिलाफ रपट लिखवाने पुलिस स्टेशन जाता है लेकिन इंस्पेक्टर बिना रपट लिखवाये उन्हें भगाना चाहता है । जब वे नहीं मानेते तब इंस्पेक्टर कहता है, '' छेडखानी हुई है ..... बलात्कार तो नहीं हुआ .. ... तुम लोग बात का बतंगड बना रहे हो । गांव में राजनीति फैलाकर शांति भंग करना चाहते हो । मैं अपने इलाके में गुंडागर्दी नहीं होने दूँगा ... चलते बनो । ''[१८] वे फिर भी नहीं गए तो इंस्पेक्टर उन्हीं पर बिफर पडता है और उनकी पीटाई करता है । गांव का सरपंच जो दलित है, बिरमा पर ज्यादति करने वाले सचिंदर के पिता का पीद्दी है । किसन गांव की पंचायत का सहारा लेना चाहता है लेकिन वह भी दलितों के खिलाफ है । पंचायत दलित बिरमा के इज्जत पर हाथ डालने वाले संचिंदर को केवल पांच रूपये का जूर्माना सूनाती है । व्यवस्था भले ही न्याय के रक्षा के लिए बनाई हो लेकिन वह उच्च वर्ग के हितों के रक्षण के काम में ही धन्यता मान रही है ।

३.१.१५ षडयंत्र

दलित समाज को हतोत्साहित करने, दंडित करने, उभरती चेतना को दबाने के लिए प्रस्थापित वर्ग साम, दाम, दंड, भेद की नीतियों को अपनाता रहा । वह हर संभव तरिके से दलितों को दबाकर रखना चाहता है । परिणामत : दलितों के न दबने पर, विरोध करने पर उसके खिलाफ भाडयंत्र रचे जाते हैं । जो सवर्ण आपस में संपत्ति को लेकर, प्रतिष्ठा को लेकर आपस लडते हैं, वे भी दलितों के खिलाफ आसानी से एक हो जाते हैं । जैसे दलितों का दलन करना उनका कर्तव्य है और उसमें भागीदारी प्रतिष्ठा । दलित साहित्य में सवर्ण समाज के ऐसे कई षडयंत्रों का पर्दा फाश किया गया है ।

' जिनावर ' कहानी का चौधरी बहु को मायके भेज, उसे असहय होने का बोध दिला, उसके यौन शोषण का षडयंत्र रचता है । बहु के मामा को पैसे देकर उसने बहु का ब्याह अपने बेटे से किया है । वह बहु के साथ यौन संबंध रखने के लिए लालाइत है । ' गोहात्या ' कहानी के दलित सुक्का के दुल्हन के रूप– रंग और स्वाभिमान की चर्चा गांव के मुखिया तक पहुॅच चुकी थी । वे उसे पाने के लिए मचल राहा था। अपने यहॉ काम करने वाले सुक्का से वह दुल्हन को हवेली भेजने की बात करता है । लेकिन सुक्का के दुल्हन को हवेली न भेजने की बात से मुखिया आहत हो जाता है । वह इसे अपना अपमान समझ लेता है और सुक्का को सबक सीखाने के रास्ते खेजने लगता है । मुखिया की गाय के अचानक मरने का गुनाह दलितों के माथे मडा जाता है जिसमें सुक्का का नाम भी शामिल है । जिन पांच दलितों के नाम लिए जाते हैं, वे पांचो निरदोष है किंतु मुखिया को किसी भी हाल में सक्का को फॅसाना है । वह अपने षडयंत्र को अंजाम देने के लिहाज से कहता है, '' तो ठीक है । ये पांच परचियॉ हैं । इन पर पंडित रामसरन ने पांचों के नाम लिख दिए हैं ।

इन्हें मैं इस तांबे के लोटे में डाल रहा हुॅ जिसके नाम की परची निकलेगी वह गौमात का हत्यारा होगा .. ''[१९] यहॉ न सबूत है, न गवाह, न दलिल, न कोई सूनवाई । पंडित सुक्का के नाम की परची निकालते हैं । शायद पांचों परचियॉ एक ही के नाम की हो ? सजा सूनाई जाती है — दहकते लोहे की फाल को लेकर दस कदम चलने की । यह भी कहा जाता है कि सुक्का ने गौमात की हत्या नहीं कि है तो आग उसका कुछ न बिघाडेगी । लेकिन इस तर्क के बावजूद आग अपना स्वभाव नहीं बदलती और सुक्का मुखिया के षडयंत्र का शिकार हो जाता है ।

३.१.१६ शोषण

शोषण के कई प्रकार है और तकरिबन हर प्रकार से दलितों का शोषण किया गया है, चाहे वह आर्थिक शोषण हो, शारीरिक शोषण हो, मानसिक शोषण हो या यौन शोषण । यौन शोषण संभावतः स्त्रियों के साथ होता है इसलिए इसे विस्तार दूसरे उपविभाग में देखा जाएगा । दलितों का आर्थिक शोषण बडे पैमाने पर किया गया है । क्योंकि समाज व्यवस्था का विभाजन ही सत्ता और संपत्ति के लिए किया गया । दलितों के हक को शोषित कर उसे सत्ता और संपत्ति से बहि कृत कर दिया इसे लिए दलितों के मुख्य शोषण के रूप में आर्थिक शोषण को देखा जा सकता है । दलितों के पास संपत्ति नहीं थी तो परिश्रम जो संपत्ति निर्माता था, उसका शोषण किया गया जो शारीरिक शोषण से संबंधित है । श्रम करने के बाद उसका मुआवजा न देकर प्रतडित करना, मानसिक यंत्रणाएॅ, गााली — गलौज शोषण ही है । दलितों को हेय मान उनकी प्रतिभा, योग्यता, क्षमता को नकारना यह भी शोषण ही है और ये सारे शोषण अर्थ से जूडे होने के कारण ही दलितों के शोषण में आर्थिक शोषण प्रमुख मद्दा बन जाता है ।

भारतीय गांवो में व्याप्त बेगार प्रथा श्रम या शारीरिक शोषण का जरिया है, जैसे परीक्षा होते हुए भी फौजासिंह जबरदस्ती ओमप्रकाश को बेगार के लिए ले जाता है । दलितों पर थोपी गयी ' सलाम ' जैसी प्रथाएँ मानसिक शोषण का ही जरिया है । कई सवर्णों द्वारा पढाई में होशियार होने वाले ओमप्रकाश को ' रहोगे तो अखिर चूहडे ही ' कहना उनके प्रतिभा, योग्यता को नकारना ही है । ' पचचीस चौका डेठ सौ ' कहानी के सुदीप के अनपढ पिता पत्नी की बीमारी में गांव के चौधरी से सौ रूप्ए कर्ज लेते हैं, प्रति माह पच्चीस रूपये सूद पर लेकिन सूद लेते समय चौधरी ' पच्चीस चौका डेढ सौ ' के हिसाब से सूद लेकर सुदीप के पिता का आर्थिक शोषण करता है ।

' हत्यारे ' कहानी का कालू लंबरदार से दो सौ रूपये कर्जा मांगने जाता है, '' कागज पर अगूँठा लगाकर लंबरदार ने महिने का सूद अग्रिम काट लिया । एक सौ साठ रूपये कालू के हाथ में टिका दिए ।''[२०] साथ में हर महीने चालिस रूपये सूद देने की चेतावनी दी । कालू के अज्ञान और मजबूरी का फायदा उठाते हुए लंबरदार देता एक सौ साठ और सूद वसूलता है दो सौ रूपयों का । इस प्रकार दलितों के आर्थिक शोषण ने सवर्णों की हवेलियॉ को बुंलद किया है ।

३.१.१७ जाति—भीतर—जाति

भारतीय समाज व्यवस्था में वर्ग और वर्ण के भीतर भी कई जातियों का उल्लेख हैं । सबसे छोटे वर्ण ब्राहमण की ही १०८ जातिया बताई गई है । जातियों ने वर्ण, वर्ग और जाति में न टूटने वाली विभेद की दीवारे बनाई । यहॉ हर जाति की अपनी धारणा, अपने रीति — रिवाज, अपने संस्कार और अपने देवी — देवता है, जो दुसरे जाति को अक्सर संदेह की निगाह से देखते हैं । जाति व्यवस्था ने कभी न खत्म होने वाले

अलगाव को लोगों के दिलों – दिमाग में भर दिया । परिणामत: हर जाति दूसरे जाति से नफरत करती हैं, फिर वह एक ही वर्ण की क्यों न हो । दलित समाज जो अधिकरों से वंचित, अभावग्रस्त जीवन जीने के लिए बाध्य है, उनमें भी जाति की दीवारे खडी की गई है । वे भी वर्चस्ववादी मानसिकता का अंगीकार करते हुए सवर्णों – सा या सवर्णों के अनुकूल व्यवहार करने लगते हैं ।

' सलाम ' कहानी का दलित लडका ' दीपू ' जिसके साथ सवर्ण वर्ग छुआ – छूत करता है, वह भी हरीश के ाादी में बानाया गया खाना खाने से इंनकार करता है क्योंकि उसे लगता है, खाना मुसलमान ने बनाया है, '' नहीं ... नहीं ... मैं मुसलमान के हाथ बणी रोहटी नहीं खाऊॅगा ... नही. खाऊॅगा .... नहीं खाऊॅगा । ''[२१] यहॉ सवर्ण के नजर में वाल्मीकि और मुसलमान दोनों दलित है लेकिन दलित लडका मुसलमान को अपने से नीचा मानता है । ' शवयात्रा ' कहानी के कल्लन का घर चमारों के घरों से भी दूर है । गावों में घरों की जगह जातीय स्थिति को स्प ट करती है । कल्लन बल्हार है जिसे दलितों में भी दलित माना जाता है । कल्लन का बेटा बाप को समझाते हुए कहता है, ''बापू, यहॉ न तो इज्जत है, ना रोटी, चमारों की नजर में भी हम सिर्फ बल्हार है ....''[२२] यह बडा दूर्भाग्य पूर्ण है कि उपेक्षित, प्रताडित, जाति के दंश से पीडित दलितों में भी जाति अभिमान पाया जाता है ।

३.१.१८ शिक्षा संघर्ष

शिक्षा के कारण ही दलितों के भीतर चेतना का अंकुर प्रस्फुटित होता है । शिक्षा के कारण ही दलित अपनी स्थिति के उचित – अनुचित का होने का बोध कर सके और संघर्ष के लिए तयार हुए । शिक्षा ही दलितों की दलितत्व से मुक्ति का साधन है । शिक्षा के अभाव में ही

दलित सही अर्थों में दलित हुए थे । दलित तब तक अपनी स्थिति को अपनी नियती मानता रहा जब तक शिक्षा से उसका साक्षात्कार नहीं हुआ था । शिक्षा प्राप्ति के अवसर ने ही दलितों को जगानेवाले डॉ. बाबासाहेब के व्यक्तित्व के निर्माण में अहं भूमिका निभाई । यह बात दलितों की चेतना को झकझोरती है । इसीका परिणाम है, दलित हर तरह के कष्ट झेलते हैं लेकिन स्वयं या अपनी संतान को शिक्षा प्राप्ति के लिए प्रेरित करते हैं ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि को मास्टरों की मार खानी पडी, माँ – बहन की गालियाँ सूननी पडी, जातिवाद के दंश सहने पडे, उन्हें स्कूल में बैठने नहीं दिया गया, दिनभर स्कूल के बरामेद और मैदान साफ करवाएँ गए, जाति बोध के चलते उन्हें फेल तक किया गया; इसके बावजूद वे शिक्षा नहीं छोडते । ओमप्रकाश के पिता जो अनपढ है, वे भी जानते हैं कि पढने से ही जाति सुधरेगी । ओमप्रकाश का छठी कक्षा में दाखिला करने के लिए पिताजी को बहू का पाबेज बेचना पडा था । वे कोशिश कर रहे थे, कहीं से जूगाड करने का लेकिन संभव नहीं हो पा रहा था । लेकिन बहू नहीं मानी थी, वह कहती है, '' इसे बेच के लल्ला जी का दाखिला करा दो । ''[२३]

' अम्मा ' कहानी की अम्मा हर तकलिफ उठाते हुए, लोगों की गंदगी साफ करते हुए भी अपनी संतानों को पढाती है । अम्मा की स्पष्ट धारणा है कि शिक्षा पाने से ही इस गंदगी से मुक्ति मिलेगी । अपने बेटे बिसन के चाल – चलन से खफा अम्मा उसे कहती है, '' ... पढ–लिख के आदमी बण जा ... किसी दफ्तर में किलारक (क्लर्क) नहीं तो चपरासी ही लग जाएगा । इस गंदगी से तो छूट जाएगा । जहाँ न दो टेम की रोटी ढंग से मिले है, न इज्जत । ''[२४]

शिक्षा के प्रति दलितों का स्पष्ट नजरियॉ है कि बिना पढे उनकी हालात नहीं सुधरेगी । इसीलिए हर हाल में पढना दलितों का मिशन बन चुका है ।

३.१.१९ एहसान फरामोशी

दलित समाज का जो शिक्षित वर्ग है, जिससे अपेक्षा है कि वह अपने समाज के उन्नति के लिए प्रयास करें किंतु यह वर्ग बडे पैमाने पर अपनी सुख – सुविधाओं को जुटाने में संलग्न हैं । उसे अपनी जाति, लोग, समाज से कोई मतलब नहीं । वे उन्हें मदद करना तो दूर तिरस्कार और घृणा से देखने लगे है । ऐसे लोगों के लिए ही मराठी में ' दलित ब्राह्मण ' का मुहावरा चल पडा है । डॉ. बाबासाहेब को शिक्षित समाज से बडी उम्मीद थी लेकिन शिक्षित वर्ग अपने बांधवों को जगाने के बजाय सवर्णों के उत्पीडन, षडयंत्र से बचने के लिए अपने लोगों से कट, जाति छिपाकर रहने लगा । उनकी एहसान फरामोशी ने उनका और समाज दोनों का नुकसान किया । यहॉ वे अर्ध शिक्षित या अल्प शिक्षित दलित भी एहसास फरामोश है, जो अपनी योग्यता का इस्तमाल अपने ही भाइयों को लुटने में कर रहे हैं ।

' अंधड ' कहानी के मि. लाल जो एक वैज्ञानिक है, सवर्णों के नजरिए और व्यवहार से तंग आकर स्वयं को संकुचित बना लेते हैं । जाति को छिपा लेते हैं । अपने लोगों से मिलते तक नही थे । जिस दीपचंद चाचा के एहसान के बादले वे आगे बढ पाए थे उनसे मिलना भी वे छोड देते है,... '' मैं नहीं चाहता, यहॉ लोगों को पता चले कि हम ' शेडयुल्ड क्लास ' हैं । जिस दिन ये लोग जान जाएंगे, यह मान – सम्मान सब घृणा–द्वे ा में बदल जाएगा ।' '[२५] थोते मान–सम्मान के

लिए, चंद सुविधाओं के लिए दलित उच्च शिक्षित वर्ग का अपने दलित भाइयों से मुँह मोड लेना, नागवार गुजरता है ।

' घूसपैठिए ' कहानी का रमेश चौधरी जो सामाजिक कार्यकर्ता है दलितों के उच्चशिक्षित पीढी से इसलिए नाराज है कि वह अपने उत्तरदायित्व को नहीं समझ रही—चाहे वह नेता हो या अधिकारी । वह अपनी भडास निकालते हुए कहता है , ''..... बाबासाहब तो हैं नहीं . ..... और बाबासाहब के नुमाइंदे बनने का जो ढोंग कर रहे हैं वे भी संसद में पहुँचेते ही गीदड बनकर उनकी गोद में बैठ जाते हैं जो आरक्षण विरोधी है .....''[२६] ' अम्मा ' कहानी की अम्मा इस बात से चिंतित है कि उसका बेटा अपने भाइयों को लुटने में लगा है, '' उसे लगातार यह दर्द साल रहा था कि उसकी कोख से एक आदमखोर ने जन्म लिया है, जो अपनों को ही खा रहा है । ''[२७]

आगे बढने वाले दलितों को अपने पीछड रहे भाइयों को हाथ देकर आगे आने के लिए प्रेरित करने का काम करना चाहिए था । लेकिन वे सामाजिक दायित्व की अपेक्षा परिवारिक सुख को महत्वपूर्ण मान अपने दायित्व से मुँह मोडने लगे है, यह निसंदेह आने वाली पीढी के लिए हानिकारक होगा ।

३.१.२० चेतनायुक्त नई पीढी

शिक्षा प्राप्ति एवं समय तथा स्थितियों के उचित आकलन से सवाल करने वाली, विरोध जताने वाली नई चेतना से युक्त दलित युवा पीढी भारीतय समाज व्यवस्था के कपोल कल्पित तर्कों पर विज्ञानिक सोच से आघात कर रही है । चाहे वह लेखक हो, वकील हो, अध्यापक हो, राजनेता हो, अधिकारी हो या छात्र; उसने अपने होने को ही अपनी अस्मिता मान लिया है । इसलिए वह जाति का न व्यर्थ अभिमान करता

है, न हीनता बोध से भर जाता है ।वह खूद को मात्र मानव मान, अपने अध्किारों के लिए संघर्ष करता है । उसे किसी के मान — मरातब, लिहाज, आदर्श से कोई लेना — देना नहीं । वह अपने तर्कों, धारणाओं पर दृढ है । सवर्ण समाज की मानसिकता दलितों के झूकने से नहीं बल्कि उचित और पूरजोर विरोध से ही बदलेगी, इसलिए वह अन्याय को सहने, सराहने के बजाय उसके विरोध में, खडा होता है ।

' सलाम ' कहानी का हरीश दलितों के आत्मविश्वास को तोडने वाली 'सलाम' के प्रथा का दृढता से विरोध करता है । वह किसी भी धमकी का, लालच का शिकार नहीं होता । ' यह अंत नहीं ' कहानी का किसन पूलिस व्यवस्था, पंचायत, गांव के मुखिया के खौक से आतंकित हुए बिना बिरमा के साथ हुए अनुचित व्यवहार का विरोध दर्ज करते हुए जूर्माना ही सही उच्च वर्ग को अपनी गलती मानने के लिए मजबूर करता है । ' जूठन ' आत्मकथा में ओमप्रकाश फौजासिंह की मॉ द्वारा फेंककर (काफी उपर से) दी गई रोटी लेने से इनकार करते है । यह नई पीढी में व्याप्त चेतना का ही परिणाम है ।

बदलती हुई स्थितियों ने अनपढ दलितों में भी आत्मविशास पैदा किया है। 'जूठन' आत्मकथा में ओमप्रकाश की मॉ सुखदेव सिंह त्यागी द्वारा किए गए अपमान, निंदा को नहीं सह पाती और जूठन को पंडाल में बिघेर ही देती है । 'बैल की खाल' कहानी के काले — भूरे भी गांव एवं संवर्णों से तंग आकर गांव छोडने की बात करते हैं, '' भूरे, चल कहीं चलते हैं, ... सुना है दिल्ली, गाजियाबाद में बडे — बडे कारखाने हैं । वहॉ कोई—ना—कोई काम तो मिल ही जाएगा .....'' [२८] अन्याय खिलाफ लडने का बल, विचार ही चेतना के निर्धारक है ।

दलित साहित्यिकों की यह एक विशेषता रही है कि उनकी कविता, कहानी दलित जीवन के किसी भी पक्ष को लेकर चले, उनके

विषय, पात्र ज्यों भी हो लेकिन अंत में आते — आते चेतनायुक्त ऐसा घुमावदार झाटका देते ही, जो सारे साहित्य को अलग उॅचाई पर पहुॅचा देता है । ' अघंड ' जैसी कहानी जो हीनताबोध, एहसान फरामोशी की कहानी है, लेखक ऐसा मोड देता है कि कहानी का नायक अपने अनुभवों के सीख द्वरा नई पीढी का मार्गदर्शन कर रहा हो, उन्हें लडने के लिए प्रेरित कर रहा हो । ठीक यही स्थिति घूसपैठिए, पच्चीस चौका डेढ सौ, खानाबदोश, सपना, दिनेशपाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन, मुंबई कांड, मैं ब्राह्मण नहीं हूॅ आदि कहानियों की है ।

३.१.२१ विरोध का नजरियॉ

जीने के सारे रास्तों पर जहॉ सशर्त पाबंदियॉ लगाई गई हो और सत्ता और संपत्ति से बेदखल किया गया हो तब विरोध करना किसी खतरे से कम नहीं होता । दलितों ने विरोध की बडी—बडी किमते चुकायी है । कभी परिजनों के प्राणों से, कभी अपने प्राणों से, तो कभी स्त्रियों को ये किमत चुकानी पडी है, अपना सर्वस्व गवांकर । लेकिन अन्यायकारी व्यवस्था के खिलाफ व्यक्तिगत तौर पर ही सही लेकिन विरोध दर्ज होता ही रहा है । दलितों में जब चेतना का अवि कार हुआ तब से विरोध की धार अधिक पैनी हो गयी है । ये विरोध हिंसात्मक भी है और अहिंसात्मक थी । दलितों का विरांध प्रतिक्रियाऍ हैं, इसलिए इनका स्वरूप क्रियाओं क्रौर्यता, विकृति और भयानकता पर निर्धर रहा है । संख्याबल, बाहुबल, संपत्ति और सत्ता आदि से कमजोर दलितों को मुकम्मल विरोध दर्ज करने के लिए कानून के दरवाजे खटखटाना अनिवार्य बन जाता है किंतु इस व्यवस्था की खमियों के कारण गुनहगार छुट जाते हैं और विरोध की दिशा भटकने की संभावनाऍ पैदा होती है ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के पात्र संयत, न्यायपरक प्रतिकार के लिए उद्युक्त है । कहीं भी मारपीट, खून का बदला खून या गैर कानूनी राह को नहीं अपनाते । 'सलाम' का हरीश दृढता से ' सलाम ' की प्रथा का विरोध करता है, बल्लू रांघड से झगडा करते नहीं बैठता । ' यह अंत नहीं ' कहानी का किसन विरोध के रास्तों की टोह लेता है । पुलिस व्यवस्था, सरपंच, पंचायत से इंसाफ न मिलने पर वह तुरंत हत्यार नहीं उठाता, वह पंचायत के फैसले को बदलाव के करवट के रूप में देखता है। खानाबदोश, सपना कहानी के दलित पात्र शो ाण की व्यवस्था को ही त्यागने का फैसला लेते हैं । ' जिनावर ' कहानी का जगेसर चौधरी का विरोध उसकी अन्याय की व्यवस्था से मुक्त होते हुए करता है और बहु के साथ नए शुरूआत की दिशा में चलता है ।

'घुसपैठिए' का रमेश चौधरी' सुभाष सोनकर की आत्महत्या का बदला उसके अंतिम संस्कार मेडिकल कॉलेज के मुख्य द्वार पर करने का फैसला लेकर करता है । साथ में उच्च शिक्षित दलितों को अवाहन करता है कि जिसमें हिम्मत है, वे आए, '' राकेश साहब, कल पोस्ट मार्टम के बाद सोनकर की लाश का अंतिम संस्कार मेडिकल कॉलेज के मुख्य द्वार पर होगा ...आपमें साहस हो तो पहुँच जाना। ''[२९] 'मुबई कांड' का सुमेर बाबसाहब के अपमान का प्रतिशोध लेना चाहता है लेकिन वह यह कहकर टाल देता है कि, '' नहीं ... यह रास्ता न बुदध का है और न ही अम्बेडकर का । नहीं, मैं एक गुनाह का बदला दूसरे गुनाह से नहीं लूँगा ।''[३१]

ओमप्रकाश वाल्मीकि के पात्र बडे संयत, संयमित तरिके से अपना विरोध दर्ज करते हैं लेकिन बेडी ही धैर्य एवं दृढता के साथ । ओमप्रकाश वाल्मीकि शायद, कागजी प्रतिशोध दिखाकर हवाई गुब्बारे फोडने का आनंद देने के बजाय, पाठकों को सोचने का अवसर प्रदान करने

में विश्वास करते हैं । उनके पात्रों की विरोध की दृढता यहीं स्पष्ट करती है।

३.१.२२ सहदयता

सवर्ण समाज से दु:ख, यातनाएँ, प्रताडनाएँ इतनी मिली कि, मन में उठनेवाली हिंसा, वेदना को थमने का अवसर ही न मिला हो । शायद दु:ख की अधिकता ने दलित समाज की मानवीयता, सहदयता को जीवित रखा । जीने का संबल और प्रेरणा मात्र पारिवारिक स्नेह था । यहीं स्नेह सवर्णों की ज्यादतियाँ सहते हुए भी दलितों को आपस में जोडकर रखता है । शोषण की व्यवस्था में पीसने से, उस यातनाओं का स्वाद चखने के कारण ही दलित समाज खून का प्यासा नहीं बना । उसके औंरों के शोषण को अपने विकास के रूप में परिभाषित नहीं किया । आज भी वह अन्याय की व्यवस्था, तंत्र, विचारधारा का विरोध करता है, व्यक्ति या समाज का नहीं । जीवन के अभावों ने दलितों के पैर हमेशा जमीन पर रखे और जमीन की वास्तविकता है आपसी प्रेम ।

' खानाबदोश ' कहानी की मानों भूखे जसवीर के लिए खाना लेकर जाती है, यह जानते हुए कि वह ब्रहमण है और उसके हाथ का खाना नहीं खाएगा । ' आम्मा ' कहानी की अम्मा ने पूरा जीवन आर्थिक अभावों में गूजारा है लेकिन वह अपने बेटे द्वारा औरो का आर्थिक शोषण होता नहीं देख सकती । आत्मकथा ' जूठन ' में जिन लोगों ने गॉव में ज्यादतियाँ की उनके रिश्तेदारों के घर आने पर ओमप्रकाश उनके स्वागत में जूट जाते हैं । ' बैल की खाल ' कहानी के काले – भूरे जो मरे हुए पशुओं की खाल बेचते हैं, रास्ते में ट्रक से टकराकर तडप रही बछडी को बचाने के लिए डॉक्टर को बुलाने की बात करते है, '' भूरे जल्दी आ ... डॉक्टर को लेके आना है, बछडी को चोट लगी है ....''[३२]

उपर्युक्त ग्रामीण जीवन के विविध पहलुओं को देखने के बाद हम कह सकते हैं कि ओमप्रकाश वाल्मीकि को ग्रामीण जीवन की गहरी पहचान है । दलितों का ग्रामीण जीवन में स्थान, उनके हालात, अभावों की स्थिति, गांवों की वर्चस्ववादी मानसिकता और उसमें सिसकता दलित वर्ग आदि का वास्तव वर्णन उनके कथा साहित्य में हुआ है । वाल्मीकि दलित समाज की भूमिका को बडी गंभीरता से साहित्य के माध्यम से व्यक्त करते हैं । ओमप्रकाश वाल्मीकि के कथा साहित्य में भारतीय ग्रामीण जीवन अपनी वास्तविकता के साथ बेबाकी से अभिव्यक्त हुआ है ।

३.२ नगरीय जीवन

ग्रामीण जीवन से अधिक हितकर दलितों के लिए नगरीय जीवन रहा है । यहॉ की आबादी एवं व्यस्तताओं के चलते किसी को इस बात से अधिक मतलब नहीं था कि वह दलित है या अन्य । सामान्य परिस्थितियों में उसके साथ सामान्य व्यवहार किया जाता था । यह बात बडी सुखदायी थी कि थोडे समय के लिए ही क्यों न हो, सामान्य स्थितियों में ही क्यों न हो लेकीन दलितों को आम समजने की स्थितियॉ नगरीय जीवन का हिस्सा बन रही थी । नगरीय जीवन में दलितों का शोषण नहीं होता ऐसी बात नहीं । लेकीन यहॉ दलितों के पास रोजी – रोटी, रोजगार के नए अवसर थे और वह चाहे तो पर्याय के रूप में अन्य काम की तलाश कर सकते थे । ग्रामीण परिवेश में रोजगार के न पर्याप्त अवसर थे, न पर्याय थे और संकुचित ग्रामीण परिवेश में दलितों के चाहने पर भी बदलाव की उम्मीद न थी । ग्रामीण परिवेश में दलितों की समस्याऍ एवं समाधान दोनों सवर्ण आश्रित होने के कारण दलित चाहे–न–चाहे जीने

की बाध्यता एवं परिवार के भरण–पोषण के मजबूरी के चलते उन्हें शोषण का शिकार बनना ही पडता था ।

नगर दलितों के लिए मखमली कालीन बिछाए नहीं था, वहॉ भी कॉटे थे, पथरीले रास्ते थे, घने बिहड थे, इसके बावजूद वे गांवों की स्थिर और निरस जिंदगी से बेहतर थे क्योंकि कम–से–कम जिंदगी का ढर्रा बदलने की आशा तो थी ही । गावों में दलितों का दलितपण एवं शोषण दोनों स्पष्ट रूप में दिखाई देते हैं । गावों में दलितों की असहायता के कारण बिना लाग–लपेट के अन्याय–अत्याचार होते हैं । नगरों में इनका रूप बहुत हद तक बदला है । नगरों में एक तो दलितों के पास रोजगार के पर्याय थे, साथ ही दलित एवं सवर्ण दोनों के संबंध पद के अनुकूल बनते–बिघडते थे । अतः शोषण, दलित उत्पीडन सीधे, स्पष्ट न होकर उसके नए रूप नगरों में इजात हुए थे, जो गावों में नहीं पाए जाते । नगरों मे दलितों को अकसर अवसर एवं आर्थिक स्तर पर छला गया हैं । वह भी तब जब दलित आगे बढने एवं उपर उठने की कोशिश करें तब । अतः नगरीय जीवन एवं ग्रामिण जीवन में भी दलित उपेक्षित, प्रताडित, शोषित होने के बावजूद चेतना, विरोध, संघर्ष, आत्मसन्मान के स्तर पर दोनों इलाकों का व्यक्तित्व भिन्न है । इसे नगरीय दलित जीवन के रूप द्वारा देखा जा सकता है –

३.२.१. आर्थिक तंगी

अर्थाभाव दलित जीवन की दयनीय वास्तविता है । अर्थ के कारण ही वह अपनी जीवन चर्या को नहीं सुधार पाएॅ । दलित समाज अर्थ प्राप्ति के पर्यायों के चलते शहरों की ओर आकृष्ट तो हुआ लेकीन अनपढ, अज्ञानी दलित समाज के हिस्से अधिकतर शारीरिक श्रम के काम ही आए, जिनका मुआवजा काफी कम था । नगरों में रहना अपने–आप में

कम खर्चिला नहीं था । अत: नगरीय जीवन में भी दलितों को घोर आर्थिक तंगी का सामना करना पडा । कौशल का अभाव, देहातीपण, अशिक्षा के कारण यहॉ भी अर्थ प्राप्ति के लिए उसे कडे संघर्ष करने पडे । नगर आयी पहली पीढि को परिवार चलाने लायक महनताना कमाने में भी बडी मशक्कत करनी पडी। गांव हो या शहर आर्थिक तंगी से दलितों का दामन नहीं छुट पाया और वे शहरों में भी अधिक सुविधापूर्ण जिंदगी नहीं जी पाए ।

आर्थिक तंगी के कारण ही ' अम्मा ' कहानी की अम्मा एक से अधिक घरों में सफाई का काम करती है । आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए ही अम्मा ७० साल की उम्र में भी सफाई का काम करती है । अर्थाभाव दलित जीवन का महत्वपूर्ण पहलू रहा है । आत्मकथा ' जूठन ' में ओमप्रकाश वाल्मीकि गांव की शिक्षा व्यवस्था से निराश हो अपना दाखिला देहरादून के कॉलेज में करते हैं । वें देहरादून के इंद्रेशनगर में रहते हैं, जहां के दलित दिनभर अपने—अपने कामों में लगे रहते हैं । इसके बावजूद उनकी जिंदगी किसी फटे हाल भीखारी से कम नहीं है । ओमप्रकाश को भी कॉलेज के बाद काम करना पडता था, '' शाम को जनेसर के साथ लकडी की टाल (परेल नगर) में चला जाता था जहॉ ट्रकों में लकडी चढाने — उतारने की मजदूरी मिल जाती थी । एक — दो घंटा काम करके पॉच — दस रूपये हात में आ जाते थे जो जेब खर्च के काम आते थे । ''[३३] ' कहॉ जाए सतीश? ' कहानी का सतीश भी आर्थिक तंगी के चलते बल्ब फैक्टरी में काम करता था । आर्थिक तंगी के कारण ही 'पच्चीस चौका डेढ सौ' कहानी के सूदीप के पिता साहूकार से कर्जा उठाते हैं ।

३.२.२. रोजगार की समस्या

दलितों के सामने रोजगार की समस्या मुँह बांए अक्सर खडी रही है। कहीं रोजगार की समस्या है तो कहीं उचित रोजगार की समस्या का सवाल है। भारतीय समाज व्यवस्था के बारें में कहा जाता है कि वह श्रम विभाजन पर आधारित है लेकिन यहां श्रम कभी प्रतिष्ठा विषय नहीं रहा । सफाई कर्मचारीयों के रूप में दलितों के काम करने पर उच्च वर्ग को आक्षेप नहीं बल्कि दलितों के योग्यता हासिल कर, बडे पदों पर नियुक्ति होनें पर उसका का खून खौलने लगता है । वह योग्यता के बजाय जाति को रोजगार एवं रोजगार क्षेत्र से जोडकर देखने का आदि है । इसलिए दलितों के सामने अक्सर उचित रोजगार प्राप्ति बडी समस्या बना रहा ।

आत्मकथा ' जूठन ' में ओमप्रकाश का पढा — लिखा होने का बावजूद लकडी के ताल में काम करना इस बात का उदाहरण है। ' रिहाई ' कहानी के अकुशल मजदूर मिट्ठन और सुगनी रोजगार की समस्या के कारण ही रामसुख लाल के गुदाम में कैद है। वहॉ से बाहर निकलने की चाह तो है लेकीन रोजगार की समस्या के चलते वह बाहर नहीं निकल नहीं पाते। ' दिनेशपाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन ' कहानी का नायक दिनेशपाल जाटव जो उच्च शिक्षित, प्रतिभा संपन्न लेखक है किंतु उसे पत्रकारिता के क्षेत्र में जाति के कारण रोजगार नहीं मिल पाता। जाति सूचक नाम दिनेशपाल जाटव से वह दिग्दर्शन बन जाता है तब कहीं जाकर उसे एक अखबार में नोकरी मिल जाती है, '' कलकत्ता से लौटते ही उसने सबसे पहला काम यह किया की अपना नाम दिनेशपाल जाटव से दिग्दर्शन कर लिया ''[३४] इस प्रकार रोजगार और उचित रोजगार की समस्या दलित जीवन का एक हिस्सा है। रोजगार मिलने पर भी यह ध्यान रखा जाता है कि दलित आगे न बढे ' कुचक्र ' कहानी के आर. बी. के साथ

के साथ यहीं होता है, उसके प्रमोश्न की खबर मिलते ही पैर खींचने के लिए सवर्ण वर्ग एक हो जाता है ।

३.२.३. शिक्षा संघर्ष

गावों में जहॉ स्कूल एवं स्कूल की व्यवस्था दलितों के शिक्षा ग्रहण में बाधा बनी, वहॉ शहरों में दलितों के खस्ताहाल आर्थिक स्थिति ने शिक्षा प्राप्ति में कई संकट खडे किए । दलितों की पहली पीढि जो शहरों में आयी वह काम की तलाश में लेकिन दूसरी पीढि शिक्षा के प्रति अधिक सजग रही। इसका एक कारण यह भी है कि पहली पीढि ने यह जान लिया था कि उनकी उन्नति का एक मात्र साधन है — शिक्षा । अतः हर कष्ट, हर यातना सहकर वह अपने बच्चों को बेहतर — से — बेहतर, अधिक — से — अधिक शिक्षा देने के लिए कटिबद्ध हुआ। साथ ही दलितों के आदर्श डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर का व्यक्तित्व, जो शिक्षा का ही परिणाम था, दलितों के शिक्षा प्राप्ति का सबसे बडा प्रेरक रहा । लेकिन दलितों के शिक्षा ग्रहण का रास्ता न कल सुलभ था न ही आज है । प्रस्थापित व्यवस्था की कोशिष रही है कि दलितों को शिक्षा से, बेहतर शिक्षा से वंचित रखा जाए ।

‘ घूसपैठिए ’ कहानी के सुभाष सोनकर, अमरदीप,विकास चौधरी, नितिन मेश्राम को मेडिकल कॉलेज में दाखिला लेने के कारण सवर्ण छात्रों की मार तथा अध्यापकों की कुदृष्टि का शिकार होना पडता है। सुभाष सोनकर सवर्ण छात्र, अध्यापक एवं व्यवस्था के अन्याय से तंग आकर आत्महत्या करता है। अमरदीप कहता है, ‘‘..... कई बार तो लगता था पढाई छोडकर वापस लौट जाएँ .... लेकिन मॉ — बाप की उम्मीदें रास्ता रोककर मजबूर कर देती हैं । उन सब यातनाओं के साथ पढाई जारी रखना .... बहुत तकलीफदेह है.... ’’[३५]

‘ कहॉ जाए सतीश? ’ कहानी का सतीश भी शिक्षा प्राप्ति के लिए घर छोडकर भाग आया है । दलितों को दलितत्व से मुक्त करने वाला कारक है — शिक्षा । अत: शिक्षा संघर्ष दलित साहित्य में चरमोत्कर्ष पर देखा जा सकता है । दलित लेखकों के चरित्र ही शिक्षा संघर्ष के बेजोड उदाहरण है ।

३.२.४. विस्थापन

गांव के जीवन, हालात एवं सवर्णों के अत्याचारों से तंग आए दलित डॉ. बाबासाहेब के आवाह्न पर बडे पैमाने पर शहरों की ओर निकल पडे। संघर्ष तो दलितों के जीवन का अभिन्न अंग है । वह गांव में रहते हुए भी करना है और शहर में आकर भी । अत: शहर में आकर बडे पैमाने पर दलितों को विस्थापितों — सा जीवन जीना पडा । वें अपना गांव, प्रदेश छोडकर शहरों में आए थे । अत: शहरों, नगरों के लिए वे विस्थापित थ । दलितों ने शुरूआती दौर में बडे पैमाने पर मजदूरी के काम किए, जहॉ काम होता वहीं डेरा डालना पडता था । दलित आज भी नगरों में अपने अभावों के चलते विस्थापित जीवन जीते हैं। नगरों की जुग्गी — झोपडियों में वह रहता तो है लेकिन कई बार विकास के नाम पर उन्हें खदेडने के कारनामें भी किए जाते हैं । एक बात यह भी कि दलित भले ही किसी प्रांत, प्रदेश, गांव को अपना कहे लेकीन दलितों को अपना कहने वाला कौन है? इस संदर्भ में डॉ. बाबासाहेब ने कहा था कि दलितों को मातृभूमि नहीं है।

‘ कूडाघर ’ कहानी का अजब सिंह शहर में आया तो है लेकिन जाति के चलते उसके परिवार को भी विस्थापित जीवन जीने के लिए मजबूर होना पडता है। ‘ कहॉ जाए सतीश ? ’ कहानी का बालक सतीश शिक्षा प्राप्ति के लिए घर छोड आया है और उसकी जाति पता

चलने से मकान मालिक सुदर्शन पंत ने उसे घर से निकाल दिया है अतः वह भी बिना आसरे के अब विस्थापित बना है । ' खानाबदोश ' कहानी के सुकिया और मानो गांव से ईंट भट्टे पर काम के लिए आए थे किंतु सूबेसिंह के ज्यादतियों के कारण उन्हें भट्टा छोड अन्य पाडाव की तलाश में निकलना पडता है, '' भट्टे से उठते काले धुएँ ने आकाश तले एक काली चादर फैला दी थी । सब कुछ छोडकर मानो और सुकिया चल पडे थे । एक खानाबदोश की तरह । जिन्हें एक घर चाहिए था, रहने के लिए।''[३६] लंबे समय से दलित समाज रोजी – रोटी की तलाश में विस्थापित जीवन जीता रहा है।

३.२.५. निवास की समस्या

शहर आए अधिकतर दलित झुग्गी– झोपडियों में रहने के लिए बाध्य थे । जिसको जहॉ जगह मिली वह वहीं सिमट गया । दलितों के काम एवं तनख्वाह दोनों निम्न स्तर के होने के कारण वे अपने निवास नहीं बना पाए या अपने लिए घर नहीं खरीद पाएँ । परिणामतः शिक्षित पीढि जब शहरों में आई, चाहे वे उच्च पदस्थ हो या निम्न पदस्थ । उन्हें निवास की समस्या का सामना करना पडा । दिक्कत यह भी रही कि उच्च पदस्थ होने के कारण तथा आमदनी ठिक होने के कारण साथ ही पढे – लिखे, अच्छे माहौल के अभिलाषि दलित, दलित बस्तियों में जा नहीं सकते थे और सवर्ण समाज उनकी योग्यता रहन, सहन को नजर अंदाज कर, उन्हें दलित मान अपने घरों में जगह नहीं दे रहे थे । दलितों के पास इतनी संपत्ति भी नहीं थी कि वे घर खरीद सकें । निवास कि मजबूरी के चलते कई दलित जाति एवं नाम छिपाकर अच्छे मोहल्ले में तथा घरों में रहने की कोशिश भी करने लगे थे । जहां उच्च विद्याविभूषित, विलायत से आए डॉ. बाबासाहेब को अगर सवर्ण समाज ने रहने के लिए घर न दिया

हो तो सामान्य दलितों के साथ सवर्णों के दूर्व्यवहार के बारे में सोचना ही क्या ?

ओमप्रकाश वाल्मीकि को शादी कर चंद्रपुर आने पर रहने के लिए जगह नहीं मिली थी अत: उन्हें अपने मित्र अजय के कमरे में रहना पडा था । ' कहॉ जाए सतीश ? ' कहानी का सतीश जाति छिपाकर मिस्टर पंत के घर रह रहा था, जिसे जाति का भेद खुलने पर घर छोडना पडता है ।

' कूडाघर ' कहानी का अजब सिंह जो सामाजिक कार्यकर्ता है तथा एक दफ्तर में काम करता है । मकान किराए पर लेते समय मकान मालिक ने जाति पुॅछी नहीं और अजब सिंह ने बताई नहीं । लेकिन जैसे ही उसकी जाति का भेद खूल जाता है, मकान मालिक उसके परिवार को मकान से निकालने पर आमदा होता है। उसकी गैर हाजरी में ही मकान मालिक ने घर छोडने के लिए कहा था । अजब सिंह की पत्नी उसे बताती है कि '' बस, अचानक आए और कहने लगे .... मकान खाली कर दो.... तुम लोगों ने मकान किराए पर लेते समय यह नहीं बताया था कि तुम लोग एस. सी. हो ।'' [३७]

३.२.६. छुआ—छूत

नगरों में शारीरिक छुआ — छूत बहुत कम देखने को मिलती है, इसका मुख्य कारण यह भी है की नगरों में किसी व्यक्ति को तुरंत जाति से नहीं जाना जाता । नगरों में संपत्ति एवं सत्ता के सारे अधिकार सवर्ण के हातों में नहीं है । नोकरी के कई उच्च पदों पर दलितों ने अपनी उपस्थिति दर्ज की है । नगरों का दलित सामान्यत: शिक्षित एवं अपने अधिकारों तथा कानूनी व्यवस्था से परिचित होने के कारण उसके साथ सीधे — सीधे छुआ — छूत बरतना खतरे से खाली नहीं है, ऐसे में नगरों के

चालाक सवर्णों ने चोरी –छुपे, छल के नए तरिके इजात किए है, जिसके द्वारा वे अपनी उच्चता को बनाए रखने के लिए तथा दलितों को नीचा दिखाने के लिए छुआ – छूत को निभाते हैं।

आत्मकथा ' जूठन ' में मुंबई के मिस्टर कुलकर्णी प्रा. कांबले सें मिलते – जुलते हैं, एक साथ गप – शप, चाय–पानी भी होता है लेकिन कांबले के लिए अलग कप की व्यवस्था की गई है, जिसे मिसेस कुलकर्णी छूती तक नहीं। यही व्यवस्था ' अम्मा ' कहानी की अम्मा के साथ मिसेस चोपडा ने की है, उसने अम्मा के लिए एक चाय का प्याला अमरूद के पेड पर रख दिया है । प्रमोशन कहानी में ' मजदूर युनियन झिंदाबाद तथा मजदूर – मजदूर भाई – भाई ' की बात की गई है लेकिन उसी समय एस. सी. मजदूर सुरेश के हाथ से दूध पीने से इंकार किया जाता है । रोज दूध लेने के लिए लडने वाले मजदूर, कई बार बुलाने पर भी कोई दूध लेने नहीं आते । इसका कारण बताते हुए अब्दुल कहता है, '' साहब, आपको पता नहीं .... सुरेश स्वीपर है ... उसके हाथ की चीज कोई कैसे खा – पी सकता है। ''[३८] शहरों में भी छुआ – छूत देखे जाती है, बरती जाती है लेकिन उसका स्वरूप अलग है।

३.२.७ विभेद नीति

सवर्ण समाज, तथाकथित उच्च वर्गीय, अभिजात वर्ग दलितों की शक्ति को कमजोर करने के लिए अक्सर विभेद की नीति को अपनाता रहा है । इस नीति का प्रयोग अक्सर दलितों को अलग – अलग, अन्य तबकों से भिन्न, निम्न दिखाने के लिए किया जाता रहा है । दलितों के हितैशी बने, उनके अधिकारों की लडाई में उनका साथ देने वाले उच्च वर्गीय सुधारवादी शक्तियों को भी पूरातनवादी वर्ग ने विभेद की नीति द्वारा भटकाने का प्रयास किया है । इसके द्वारा सवर्ण – दलित ही नहीं

तो दलित – दलित या दलित अन्य धर्मीय के बीच भी आग लगाने के प्रयास किए गए है । ' मुंबई कांड ' कहानी में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने बताया है कि कैसे एक निश्चित समय पर , ६ दिसंबर को डॉ. आंबेडकर की मुर्ति को मुंबई मे अपमानित किया जाता है और आंबेडकर समर्थ कों पर गोलियॉ चलाई जाति है । यह डर के द्वारा अन्यों से आंबेडकर समर्थकों को अलग घेरने का ही षाडयंत्र था ।

' ब्रह्मास्त्र ' कहानी में कंवल कुमार जो दलित है अपने ब्राह्मण मित्र अरविंद नैथानी की बारात में, उसके काफी आग्रह करने पर जा रहा है लेकिन पंडित माधव प्रसाद भट्ट जाति, उॅच – नीचता का हवाला दे, विभेद की नीति को ब्रह्मास्त्र की तरह अपनाता है ओर कुंवल तथा अरविंद की दोस्ती में जाति की दरार पैदा करता है । ' सपना ' कहानी का ऋषी एवं गौतम सांझा मंदिर बनाने में खूब महनत करते हैं । मुर्ती की प्राण प्रतिष्ठा समारोह में गौतम जो एस. सी. है, उसके आगे बैठने पर आक्षेप उठाया जाता है और ऋषी से कहा जाता है कि उसे पीछे बिठाए। ऋषी के न मानने पर नटराजन विभेद की नीति अपनाते हुए कहता है, '' ऋषी तुम ब्राह्मण होकर ऐसी बाते कर रहे हो .... समझने की कोशिश क्यों नहीं करते। ''[३९] यहॉ ऋषी को उसके ब्राह्मण होने की याद दिला गौतम को अकेला घेरने की कोशिश की गई है । ' कुचक्र ' कहानी के आर. बी. को अकेला अलग–थलग घेरने की कीशिश होती है ।

३.२.८. शोषण

गांवों की तरह शहरों में भी दलितों का आर्थिक, शारीरिक, मानसिक, यौन शोषण बडे पैमाने पर होता है । गांवो में जहॉ इसका स्वरूप शारीरिक अधिक है, वहीं शहरों में मानसिक शोषण अधिक होता है । शारीरिक शोषण से अधिक खतरनाक मानसिक शोषण होता है क्योंकि

इस शोषण के द्वारा व्यक्ति एवं उसके आत्मविश्वास को तोडने का प्रयास किया जाता है । दलित समाज के बढते चरण को रोकने के लिए, उन्हें बहकाने के लिए, विकास गति अवरिद्ध करने तथा अपनी झूठी शानौ – शौकत, रूतबा, प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए दलितों का शोषण किया जाता है । शहरों के दलितों की सजगता के चलते दफ्तर के कानून के गलत इस्तमाल, अपने ओहदे का नाजायज लाभ तथा सवर्ण जाति के लोगों को भडकाकर, उनका समूह बनाकर सवर्ण समाज दलितों को प्रताडित करने, मानसिक तणाव बढाने तथा उसकी आवाज दबाने की कोशिश करता है।

' रिहाई ' कहानी के सुगनी और मिट्ठन का शारीरिक शोषण किया जाता है तो ' जंगल की रानी ' कहानी के कमली का यौन शोषण करने का प्रयास किया जाता है । ' प्रमोशन ' कहानी के सुरेश का शोषण उसके तारिफ और मजदूर होने के आड में होता है तो ' जंगल की रानी ' कहानी के सोमनाथ की विरोध की आवाज दबाने के लिए उसकी बेरहमी से पीटाई की जाती है । ' सपना ' कहानी के आर. बी. के प्रमोशन से खफा निशिकांत एवं विभाग के वरिष्ठ अधिकारी वी. के आर. बी. का ट्रांसफर स्टोअर विभाग में कर उसे मानसिक यातना देने का प्रयास करते हैं, '' आर. बी. को स्टोअर में स्थानांतरित करने के पीछे वी. के. की गहरी चाल थी । वह जानता था, स्टोअर में जो भी जाएगा फॅसेगा । इसलिए आर. बी. से ज्यादा उपयुक्त पात्र और कौन हो सकता था। ''[४०] इस प्रकार आर. बी. की शांति भंग कर, उसका मानसिक शोषण किया जाता है तो ' घूसपैठिए ' कहानी के दलित छात्रों के योग्यता एवं प्रतिभा का शोषण किया जाता है।

३.२.९. कार्यालयीन षडयंत्र

शिक्षा के प्रचार — प्रसार एवं दलितों की शिक्षा प्राप्ति की लगन, उनके संघर्ष एवं जूझारू प्रयासों के चलते अपनी योग्यता पर वे कई दफ्तरों, कार्यालयों में उच्च — निम्न पदों पर नियुक्त हुए; लेकिन भारतीय समाज की उॅच — नीच की मानसिकता ने उनके योग्यता तथा प्रतिष्ठित क्षेत्रों में उनकी उपस्थिति को अपने आरक्षित क्षेत्र में हस्तक्षेप के रूप में देखा। उच्च अधिकारी को फंसाने, उसे उस पद से हटाने, दलितों के प्रमोशन रोकने के लिए षडयंत्र किए जाने लगे । उच्च शिक्षित वर्ग की जाति अंधता एवं जाति अहंकार को हम उनके कार्यालयीन बर्ताव से जान सकेंगे । कार्यालयों की सवर्ण व्यवस्था दलितों को पीछे खींचने में संलग्न है, ऐसा प्रतीत होने लगता है । कार्यालयों में अक्सर यह कोशिश की जाति है कि दलितों को किसी — न — किसी तरह, किसी — न किसी मसले में फंसाया जाए।

' कुचक्र ' कहानी के आर. बी. के. प्रमोशन की खबर आते ही, उसे बधाई देने के बजाए उसका प्रमोशन रोकने की कोशिश की जाती है । यहॉ हम देखते हैं कि कैसे एक दलित के प्रमोशन के खबर से जातीय शक्तियॉ एक होने लगती है । आर. बी. को फंसाने के लिए उसकी ए. सी. आर. खराब कर दी जाती है, स्टोअर विभाग का ज्ञान न होने के बावजूद उसका तबादला स्टोर विभाग में किया जाता है । इस प्रकार सारा दफ्तर एक षडयंत्र में तब्दील होता है । ' दिनेशपाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन ' को भी दफ्तर के षडयंत्र का शिकार बनकर नोकरी से हाथ धोने पडते हैं, उसकी पत्रकारिता के प्रति की निष्ठा और इमानदारी उसके दूश्मन बन जाते हैं। दलित उत्पीडन की खबर छापने पर बीना किसी पूछ —ताछ के उसे काम से निकाला जाता है, '' योर सर्विसेज आर टर्मिनेटेड फ्रॉम टूडे (आपको आज से बर्खास्त किया जात है) हस्ताक्षर शिवनाराय

जोशी। ''[४१] दफ्तर की सवर्ण हितैशी नीतियों का बलि दिग्दर्शन को बनना पडता है।

३.२.१०. पूर्वाग्रह

पूर्वाग्रह दलित जीवन का अंग न होकर दलितों के जीवन, स्वभाव तथा स्थितियों के बारे में देखने, सोचने का सवर्णों, उच्चवर्ग का नजरिया है । अक्सर कहा जाता है कि दलितों की रहन — सहन, खान — पान, अज्ञान, अस्वच्छता के कारण दलितों के साथ सवर्ण समाज ने छुआ — छूत बरती तथा उन्हें समाज का अंग नहीं बनने दिया । किंतु सवाल यह भी है कि आज स्थितियॉ बदल गई है, इसके बावजूद सवर्णों के मन से दलितों के प्रति के घृणा — तिरस्कार में कमी नहीं आई है । सवर्ण दलितों के प्रति पूर्वग्रह से ग्रासित है । उनके लिए अनुभव के बजाय बुजुर्गों द्वारा घर में दलितों के बारे में कही गई बातें अधिक महत्वपूर्ण हैं। कोई भी दलितों में आए सुधार को नहीं देखना चाहता है, जैसे की उन्हें दलितों को दलित बनाएँ रखने की हडबडी हो ।

आत्मकथा ' जूठन ' में मुंबई रहते समय ओमप्रकाश का अच्छा — खासा परिचय मिस्टर कुलकर्णी से होता है । उनका घर आना — जाना रहता है तथा कुलकर्णी की बेटी सविता ओमप्रकाश की ओर आकृष्ट है । कुलकर्णी परिवार के उॅच — नीच व्यवहार को देखकर ओमप्रकाश ने सविता से जानना चाहा ऐसा क्यों? तो उसने कहा था एस. सी. अनकल्चर्ड होते हैं । लेकिन उसके अपने अनुभव शुन्य थे, उसकी यह धारणा उसके माता — पिता ने बनाई थी, इसलिए वह ओमप्रकाश के प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाती, '' तुम ऐसे कितने लोगों को करीब से जानती हो ? इस विषय में तुम्हारे व्यक्तिगत अनुभव क्या है ? '' [४२]

' कहॉ जाए सतीश? ' कहानी की मिसेस पंत भी ऐसे ही पूर्वग्रह का शिकार है । ' सलाम ' कहानी के कमल उपाध्याय की मॉ उसके दलित मित्र हरीश को घर लाने पर बौखला जाती है । कमल को चाटा तो हरीश का गालियॉ देकर भगाती है । कमल की मॉ की भी धारणा है कि, '' ... इनके संस्कार गलत हैं, ये छोटे लोग हैं । इनके साथ बैठने से बुरे विचार मन में पैदा होते है....'' [४३] कमल के मॉ के भी अपने अनुभव शुन्य है । सवाल यह भी है कि जीवन के हजारों अभावों से ग्रासित व्यक्ति, समाज शानौ — शौकत से रहे कैसे ? भारतीय समाज व्यवस्था ही दलितों के दलन के लिए बनाई गई हो तब उन पर आक्षेप उठाना सरासर बैमानी है कि उनके रहन — सहन, घर, साफ — सूथरापन, रंग — रूप, भाषा आदि अच्छे नहीं हैं ।

३.२.११. हिनताबोध

योग्यता को नकार केवल जाति को आधार मान दलितों का मूल्य आंकने की सवर्णों की प्रवृत्ति ने दलितों की मनोदशा को ठेस पहुॅचाई । जाति के कारण झेलनी पडी जिल्लत, किया जाने वाला अपमान, नीचा दिखाने की सवर्णों की जद्दोजहद, दलितों के दयनीय हालात, अज्ञान इन सारी बातों से आहत हो कई उच्च शिक्षित दलितों में हिनताबोध पनपा और वे जाति से बचने के प्रयास में जूटे । इन लोगों ने अपनी मूल पहचान मिटाकर, नई पहचान स्थापित करने का प्रयास किया । कइयों ने अपने नाम तक बदल डाले । वे अपने दलिते भाइयों से कट सवर्ण बनने की कोशिश करने लगे ।

चंद दलितों में आई इस प्रवृत्ति ने दलितों का ही नूकसान किया। अपनी जाति छिपाने के लिए हिनताबोध से ग्रासित दलितों ने अपने ही लोगों से मिलना — जूलना छोड दिया। समाज जिससे अच्छाई की

उम्मीद कर रहा था, जिन से कुछ प्रेरणाएँ ग्रहण की जा सकती थी, वह वर्ग ही उपने समाज से कटने लगा । परिणामत: शिक्षित लोगों के प्रति अनपढ, गरीब दलितों में अविश्वास पनपने लगा । हिनताबोध से ग्रासित दलितों के अपने कुछ तर्क एवं कारण हो सकते हैं लेकिन जिस भी कारण से हो, यह दलितों के लिए हितकर नहीं है । ' अंधड ' कहानी के मिस्टर लाल लोगों से कटने, जाति छिपाने का कारण बताते हुए कहते हैं, '' मैं नहीं चाहता, यहॉ लोगों को पता चले कि हम ' शेडयूल्ड कास्ट ' हैं । जिस दिन लोग ये जान जाएंगे, यह मान – सम्मान सब घृणा – द्वेश में बदल जाएगा ।'' [४४]

' भय ' कहानी का दिनेश भी हिनताबोध से ग्रसित है और जाति का भेद खूलने के भय से अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है। ' मैं ब्राह्मण नहीं हूँ ' कहानी के दोनों शर्मा परिवार दलित है लेकिन वे इस बात को नहीं स्वीकारते । लेकिन नई चेतना युक्त पीढि अपनी असली पहचान नहीं छिपाना चाहती । ओमप्रकाश वाल्मीकि ने कहानी 'अंधड' को अंतिम समय में जो मोड दिया है वह उनकी अपेक्षा को व्यक्त करता है । हिनताबोध से ग्रासित, अपने समाज से कटते दलित उच्चशिक्षित वर्ग को मूल्यांकन करना चाहिए और सोचना चाहिए कि क्या उसकी दिशा सही है? मिस्टर लाल सोचते है और अपनी दिशा बदलते है तथा अपनी जडों को सींचने की ठान लेते हैं।

३.२.१२. सवर्ण समाज के प्रति अविश्वास

सवर्ण समाज के हितों की रक्षा के कारण तथा उनकी सुविधा भोगी जिंदगी के निश्चितता के कारण दलित समाज पर सदियों से अन्याय, आत्याचार किए गए । दलितों को ठगने, बेवकुफ बनाने, तथा उनपे जूल्म ढाने में सवर्ण समाज ने कोई कसर नहीं छोडी । जहॉ भी सवर्ण समाज ने

दलितों के साथ अच्छाई से पेश आने का षडयंत्र खेला है, वहॉ उन्होंने अधिक ताकत से दलितों का नुकसान ही किया है । इतिहास इस बात का गवाह है कि सवर्णों ने जालसाझी, षडयंत्र, धोके से दलितों को फंसाया है, इसी कारन दलितों मे सवर्णों के प्रति अविश्वास की भावना पाई जाती है । वर्तमान समय के भी कई वारदातों के देखने के पश्चात यह भावना अधिक बलवती होती जाती है । दलितों के अपने अनुभव भी इस बात को पुख्ता करते हैं कि सवर्ण समाज अन्य किसी भी बात से अधिक अपने फायदे एवं जाति श्रेष्ठता को वरियता देता है ।

' सलाम ' कहानी के दलित पात्र हरीश का कमल उपाध्याय से मेल जोल देखकर हरीश की पडोसन सुगना कहती है, '' बेट्टे, बामन से दोस्ती रास नहीं आएगी। '' [४५] और होता भी यहीं है कि कमल की मॉ को हरीश के जाति का पता चलने पर वह गालियॉ देकर उसे को घर से भगाती है । ' खानाबदोश ' कहानी का जसदेव जो ब्राह्मण है, दलित सुकिया और मानो को अपना रंग दिखा ही देता है और ठेकदार असगर सिंह, सुबेसिंह के साथ मिलकर मानो को परेशान करने लगता है । ' प्रमोशन ' कहानी का रामऔतार पांडे ब्राह्मण मजदूर के लिए आंदोलन करता है लेकिन दलितों के प्रश्नों से उसे कोई मतलब नहीं है । इसलिए मजदूर सुरेश की पत्नी कहती है, '' अजी, कल आपके साथ कुछ ऐसा — वैसा हो जावे, तो ये लोग तब भी धरने पर बैठेंगे? आपका साथ देंगे?''[४६] यहॉ सुरेश की पत्नी का सवर्णो के प्रति का अविश्वास स्पष्ट दिखाई देता है।

३.२.१३. सुधार का दिखावा

सवर्ण समाज इस बात पर जोर देते नहीं थकता कि अब पहले — सा कुछ भी नहीं रहा । सब कुछ बदल गया है । लेकिन ये सब

मंचीय भाषा है, उनके अंतस में अब भी वहीं पूरातन सोच है, जिसमें दलित हेय, हीन, घृणा और तिरस्कार के पात्र है । सवर्ण समाज का एक ऐसा वर्ग जो स्वयं को दलितों का पक्षधर मानता है लेकिन परीक्षा की घडी पर अपनी असलीयत दिखाता है और सुधार की केंचुली उतार देता है । ओमप्रकाश वाल्मीकि ने चेतना और प्रतिबद्धता के साथ दलित समाज के ध्येय प्राप्ति में सहायक होनेवाले सवर्ण पात्रों का भी चित्रण किया है, तो दलितों का केवल अपने फायदे के लिए इस्तमाल करने वाले सवर्णों का भी भांडाफोड किया है ।

' सपना ' कहानी के नटराजन, नागराजन इसी प्रकार के जीव है, जो दलितों के मंदिर निर्माण की प्रक्रिया के योगदान को तो स्वीकारते हैं लेकिन पूजा, प्रतिष्ठान में उनकी उपस्थिति नहीं सह पाते, वहॉ उनकी जातीय अस्तिता जागृत हो जाती है । ' सलाम ' कहानी का कमल उपाध्याय स्वयं को सुधारवादी दर्शाता है लेकिन उसके घर भी दलित मित्र हरीश के लिए अलग बर्तन रखे गए हैं । ' ब्रह्मास्त्र ' कहानी का अरविंद नैथानी जो ब्राह्मण है अपने दलित मित्र कवंल को शादी पर बुलाता तो है लेकिन पंडित माधव प्रसााद भट्ट के जिद के आगे हाथ टेक देता है । कवंल को शादी में न ले जाने की अपनी मजबूरी को वह निम्न शब्दों में व्यक्त करता है — '' कंवल! मुझे माफ कर देना ... यहॉ कुछ नहीं हो सकता .... सड चुका है सब कुछ....''[४७] ' मजदूर — मजदूर, भाई — भाइ ' कहने वाली ' प्रमोशन ' कहानी के सवर्ण एक दलित के हाथों से दूध पीने में अपनी/जाति की तौहीन मानते हैं और बहिष्कार के द्वारा अपनी मौन अस्वीकृति दर्शाते हैं।

३.२.१४.योग्यता को नकारने का षडयंत्र

भारतीय समाज व्यवस्था की स्थिर एवं दृढ धारणा दलितों में योग्यता हो ही नहीं सकती को अवसर प्राप्त दलितों ने ध्वंस करना शुरू किया । दलितों ने यह दिखाना आरंभ कर दिया कि योग्यता किसी धर्म, समाज की बपौति नहीं होती । डॉ. आंबेडकर से प्रेरणा ग्रहण करने वाला दलित वर्ग, अपनी योग्यता के बल पर प्रस्थापित वर्ग से लोहा लेने के लिए सक्षम बनने लगा है । किंतु भारतीय समाज व्यवस्था का लक्ष्य उच्च वर्ग के हितों का रक्षण होने के कारण दलितों की योग्यता को नकारने का घिनौना षडयंत्र खेला जाने लगा । हर हाल में यह जताने की कोशिश की जाने लगी कि दलितों का विकास उच्च वर्ग की महरबानी और दिशा दर्शन में हो रहा है । जो इस बात को स्वीकारते है उनका दोहन करना तथा जो इस बात हो नहीं स्वीकारते उनका हनन करना प्रस्थापित वर्ग का लक्ष्य रहा।

' दिनेशपाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन ' कहानी का दिग्दर्शन जब तक सवर्णों हितों के अनुकूल काम करता रहा तब तक वह उपयोगी जीव था लेकिन वह जैसे ही अपनी चेतना, योग्यता, इमानदारी तथा पत्रकारीता के नैतिक जिम्मेदारी से काम लेता है, संपादक शिवनारायण जोशी उसे बाहर का रास्ता दिखाते हैं । दलित होने के कारन कलकत्ता के साप्ताहिक में उसे योग्यता के बावजूद नौकरी नहीं दी गई थी ।

' कुचक्र ' कहानी के आर. बी. के विकास में उसकी योगयता के बजाय जाति को महत्व दिया जाता है और उसे फंसाने के लिए, उसकी नौकरी खराब करने के लिए प्रयास किए जाते हैं । सवर्ण वी. के. एवं निशिकांत जो आर. बी. के काम के प्रशंषक थे आर. बी. के. प्रमोशन की खबर आने पर उसकी योग्यता पर प्रश्न उठने लगते हैं । ' घूसपैठिए ' कहानी के दलित छात्रों की योग्यता को दबाने के लिए उनका मानसिक, शारीरिक शोषण किया जाता है । उनकी किसी भी हरकत को

बगावत के रूप में देखा जाता है, '' सोनकर को पहली परीक्षा में फेल कर दिया गया था । क्योंकी उसने प्रणव मिश्रा के खिलाफ पुलिस में नामजाद रपट लिखाने का दुस्साहस किया था ...'' [४८] इस प्रकार दलितों की प्रतिभा, योग्यता को नकारने, मिटाने का प्रयास किया जाता है; सोनकर को आत्महत्या करने के लिए मजबूर होता है ।

३.२.१५. आरक्षण विरोध

आरक्षण मिलने से दलितों की प्रगति काफी तेजी से हुई । इसमें आरक्षण के साथ दलितों के परिश्रम, लगन, ईमानदारी एवं समर्पण भावना भी महत्वपूर्ण थी । दलितों की प्रगति को फूटी ऑख सहन न करने वाला उच्च वर्ग दलितों को मिले आरक्षण के खिलाफ लफ्फाजियॉ कसने लगा और कोशिश करने लगा कि दलितों को आरक्षण से बेदखल किया जाए । सवर्ण समाज कई क्षेत्रों में होने वाले स्वयं के आरक्षण को तो नजर अंदाज करता है क्योंकि उसकी असली परेशानी है दलितों का विकास । भारतीय समाज व्यवस्था ने एक तरह से व्यवसाय आरक्षण की नीति ही अपनाई है — धर्म, शिक्षा — ब्राह्मण, जो आज भी बडे पैमाने पर आरक्षित है । वैश्य — व्यापार, इसे भी देखा जाए तो बहुत कुछ आरक्षित है । जाट, ठाकूर जमीन हथियाकर बैठ चुके हैं । आपत्ति केवल दलितों के विकास से है, जिसमें उसकी महनत भी है और जो परंपरागत भी नहीं है किंतु बसकी भडास आरक्षण विरोध के रूप में निकाली जाती है।

' कुचक्र ' कहानी का कामचोर निशिकांत आरक्षण के खिलाफ है क्योंकि दलित आर. बी. का प्रमोशन होने जा रहा है । ' घूसपैठिए ' कहानी के मेडिकल कॉलेज का डीन डॉ. भगवति उपाध्याय आरक्षण के खिलाफ है और वह आरक्षण से आए दलित छात्रों के शोषण को सही करार देते हुए कहता है — '' आरक्षण से आए हो थोडा — बहुत

तो सहना ही होगा । '' [४९] ' कुडाघर ' कहानी के अजब सिंह को यह अजब लगता है कि पब्लिक स्कूल के छात्रों ने आरक्षण के विरोध में जुलूस निकाला है, जिन्हें आरक्षण का मतलब भी पता नहीं और ऐसे स्कूलों में दलित परिवार के बच्चों को कोई जगह भी नहीं है । दलित आरक्षण का विरोध दलितों को गुमराह करने या जो मिला है उसमें संतुष्ट रहने के लिए किया जाता है ।

३.२.१६. आत्मकेंद्रित दलित वर्ग

नगरों की झूग्गी – झोपडियों से या गांवों से जो उच्च शिक्षित दलित वर्ग शहरों में अच्छे पदों पर विराजमान हुआ, उनसे दलित समाज को बडी उम्मिदे थी । उनके सामने डॉ. बाबासाहेब का आदर्श था, जो उच्च विद्या विभूषित हो अपने समाज के उत्थान में संलग्न हुए थे । किंतु दुर्भाग्य से, सवर्णों के व्यवहारों, दलित जीवन के कटू अनुभवों, बच्चों के भविष्य के खातीर, सुविधाभोगी जीवन की लंलसा से या अन्य कारनों से यह वर्ग स्वयं के परिवार तक ही सिमट गया । जीवन संघर्ष से जूझने के बजाय इस वर्ग ने पलायन का रास्ता अपनाया और सुविधाभोगी खूशाल परिवार के ध्येय प्राप्ति में जूट गया । यह वर्ग दलित समाज के सामाजिक उत्थान के प्रक्रिया को तेज करने वाला वर्ग था, जिसने आत्मकेंद्रित हो सामाजिक आंदोलन को न केवल हानि पहुॅचाई बल्कि गरीब दलितों में सुविधाभेगी दलितों के प्रति संदेह निर्माण किया।

' मैं ब्राह्मण नहीं हूॅ ' कहानी के गुलजारीलाल शर्मा एवं मोहनलाल शर्मा ने अपने नाते – रिश्तों से मुॅह मोड लिया है और वे दोनों स्वयं को ब्राह्मण के रूप में स्थापित करने की कोशिश में जूटे हैं । ' घूसपैठिए ' कहानी का राकेश जो एक दफ्तर में अफसर है, उसकी पत्नी इंदू कहती है, '' ... तुम चाहे जितने बडे अफसर बन जाओ, मेल –

जोल इन लोगों से ही रखोगे, जिन्हें यह तमीज नहीं है कि सोफे पर बैठा कैसे जाता है ... ''[५०] एक दलित का यह रवय्या अपनी जडों पर कुल्हाडी चलाने जैसा है । ' अंधड ' कहानी के मिस्टर लाल अपनी पत्नी सविता से कहते हैं, ''मैं जिस गंदगी से तुम्हें बाहर निकालना चाहता हूँ ... तुम लौट – लौटकर उसी में जाना चाहती हो। तुम वहॉ जाओगी, तो वे भी यहॉ आएँगे। मैं नहीं चाहता, यहॉ लोगों को पता चले कि हम शेडयूल कास्ट है। ''[५१]

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने उपर्युक्त तीनों कहानियों में दलितों की आत्मकेंद्रित प्रवृत्ति का चित्रण किया है लेकिन कहानी के अंत में इस प्रवुत्ति को टूटते दिखाकर दलित उच्च शिक्षित वर्ग से सकारात्मक अपेक्षा व्यक्त की है । उन्होंने दलित युवा पीढी की भूमिका को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है जो आशावादी भविष्य का सूचक है ।

३.२.१७. प्रतिशोध/विरोध

सवर्ण एवं प्रस्थापित समाज की अन्यायकारण क्रियाओं के खिलाफ दलितों की कार्यवाही यहॉ प्रतिशोध के रूप में विचारणीय है । सदियों से दलित सवर्णों के अन्याय, अत्याचार को अपनी नियती मानकर सहता रहा है, इसके बावजूद रक्त पिपासू सवर्ण मानसिकता ने कभी भी दलितों को मनूष्य मान, उनकी इच्छा – आकांक्षाओं पर गौर नहीं किया किंतु अन्याय, अत्याचार तथा अज्ञान पर आधारित मनुष्य को दलित बनने पर मजबूर करनेवाली व्यवस्था का पर्दाफाश ज्ञान के प्रकाश से होने लगा । शिक्षा अर्जन से जागृत दलित समाज ने अपनी अस्मिता एवं स्वाभिमान की रक्षा के लिए जो कदम उठाए, वे दलित साहित्य में न्यायपरक विरोध के रूप में अंकित है । प्रस्थापित व्यवस्था ने जिस प्रकार दलित एवं उनके अधिकारों को नकारा, उसी प्रकार प्रस्थापित व्यवस्था को नकारना विरोध का

सशक्त रूप मान कह सकते हैं, जो ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में स्पष्टता से दिखाई देता है।

' मुंबई कांड ' कहानी का सुमेर मुंबई में हुए डॉ. बाबासाहेब के अपमान का प्रतिशोध लेना चाहता है । उसके बाद हुई गोलीबारी तथा बाबासाहेब समर्थकों की हत्या ने उसे विचलित कर दिया था । खास बात यह भी कि यह अपमान किसी षडयंत्र के चलते हुआ था क्योंकि अपमान का दिन था छह दिसंबर, जो बाबासाहेब का महापरिनिर्वाण दिन है । इसका बदला लेने के लिए सुमेर गांधीजी की मुर्ति का अपमान करने की सोचता है लेकिन वहां पहुॅचते — पहुॅचते उसमें आया बदलाव दलितों के विरोध की धार को सशक्त बनाता है । जिस षडयंत्र के चलते बाबासाहेब का अपमान किया था, सुमेर प्रतिशोध का रवैय्य बदलकर, गांधीजी का अपमान न कर, षडयंत्र के उद्देश्य को ध्वस्त करता है । विरोध का सोचा —समझा, तत्वों पर आधारित यह नजरियॉ दलितों को औरों से अलग और प्रबुद्ध घोषित करेगा।

' रिहाइ ' कहानी का छुटकु लाला का लहूलूहान करता है, उसकी उम्र और उसके साथ हुए अन्याय का इस से बेहतर प्रतिशोध शायद नहीं हो सकता था। ' घूसपैठिए ' कहानी में सोनकर के अंतिम संस्कार मेडीकल कॉलेज के मुख्य द्वार पर लेने का निर्णय, ' सपना ' कहानी के गौतम द्वारा पूजा, अनुष्ठानों की औचित्यता को नकारना, ' कुचक्र ' कहानी के आर. बी. का वी. के. तथा निशिकांत की असलीयत का पर्दाफाश करना, ' ब्रह्मास्त्र ' कहानी के कंवल के पिताजी द्वारा पंडित को भगाना विरोध के मुखर स्वर है । इनकी विशेषता यह है कि ये क्षणिक आवेग, उद्वेग, क्रोध या बोखलाहट न होकर सोची — समझी संयत एवं गंभीर प्रतिक्रियाऍ है।

३.२.१८. स्वाभिमान

व्यक्ति या समाज की प्राथमिक जरूरतों के पूरा होने पर वह कला, साहित्य, चेतना, स्वाभिमान, अस्मिता, मान – सम्मान के प्रति सजग होने लगता है । समय की मार ; समाज की मान्यताएँ ; धर्म, सत्ता, संपत्ति से निष्कासन आदि के कारण दलित समाज लंबे समय तक रोटी की समस्या से जूझता रहा । वर्चस्ववादी भारतीय पूरातनवादी मानसिकता ने यह बराबर ध्यान रखा कि दलित समाज जीवन की प्राथमिक जरूरतों से उभर न पाए, उसने दंडविधान दलित समाज को दबााने, कुचलने के अनुकूल बनाएँ। परिणामत: लंबे समय तक दलितों में स्वाभिमान चेतना ही विकसित नहीं हो पाई/होने नहीं दी और यह लंबा समय सदियों का रहा ।

आधुनिक भारत में दूनियॉ से संपर्क आने से, अंग्रेजों के सुधारवादी विचार से, मुक्त शिक्षा प्रणाली से तथा फुले – शाहू – आंबेडकर के विचारों के कारण दलित समाज का स्वाभिमान जागृत हुआ । रोजगार के नए अवसर, शिक्षा की उपलब्धता, घटता परावलंबित्व आदि ने दलितों की स्वाभिमान चेतना को सशक्त बनाया । ओमप्रकाश वाल्मीकि की ' अम्मा ' कहानी की अम्मा, जो सफाई कर्मचारी है स्वाभिमान चेतना से लबालब है । न वह अन्याय – अपमान सहती है, न दूसरों पर होते देख सकती है । ' घूसपैठिए ' कहानी के राकेश का सोनकर के अत्यसंस्कार में शरीक होना स्वाभिमान का ही लक्षण है, जो गलत नीति का विरोध करता है । अंधड, मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, सलाम, खानाबदोश, सपना, कुचक्र कहानी के पात्र अपनी स्वाभिमान की रक्षा के लिए स्थितियों का मुकाबला करने के लिए तयार है ।

' सलाम ' कहानी के हरीश द्वारा ' सलाम ' जैसी जाति की घाई चौडी करनवाली, दलितों को हीन समझाने वाली, दलितों के स्वाभिमान को ठेस पहुँचाने वाली तथा उच्च वर्ग की श्रेष्ठता बयान करने

वाली प्रथा तोडने पर लेखक कहता है, '' हरीश की आंखों में आत्मविश्वास और स्वाभिमान के उगते सुरज की चमक दिखाई पड रही थी।... ''[५२] यहॉ से आगे का दलित – गैर दलित संघर्ष नव चेतना से भारित दलित समाज के स्वाभिमान तथा प्रस्थापित वर्ग की पूरातनवादी सोच के बीच की टकराहट होगा । ओमप्रकाश वाल्मीकि के शिक्षित, उच्चशिक्षित, अनपढ आदि बहुतायत पात्र स्वाभिमान चेतना से युक्त है ।

दलित समाज का शोषण ग्रामीण एवं नगरीय दोनों क्षेत्रों में होता रहा है लेकिन उनकी भिन्नता को अधिक स्पष्टता से अधोरेखित करने का प्रयास किया है । नगरों में दलितों का दोहन बडे पैमाने पर अवसरों की अफरा–तफरी, योग्यता – प्रतिभा का हनन, श्रेय और सम्मान से निष्कासन तथा भेद नीति को अपनाकर किया जाता है । यह शोषण दिखने में गांव के मुकाबले अधिक कठोर, हानिकारक नहीं लगते लेकिन यह नई पीढि के विकास में बाधा निर्माण कर उसके विश्वास को तोडने की साजिशे हैं, जो उसकी भयानकता को गांवों से अधिक खतरनाक बना देती है ।

३.३ स्त्री जीवन

भारतीय समाज व्यवस्था में, धर्म ग्रंथों में तथा विद्वानों के चिंतन में हम पाते हैं कि स्त्रियों को शुद्र, दलित कहा गया है। दलितों के समान ही स्त्रियों का जीवन भी गुलामों की तरह रहा है । उन्हें भी किसी प्रकार की छुट नहीं थी, न शिक्षा प्राप्ति की, न संपत्ति धारण की, न काम के चयन की, न निर्णय स्वतंत्रता की । वह भी भारतीय पुरूषसत्ताक समाज व्यवस्था की शिकार रही है । सदियों तक उसके जीवन का लक्ष्य सेवा कार्य एवं प्रजनन निश्चित किया गया था । इससे अलग उसके व्यक्तित्व को, योग्यता को समाज व्यवस्था ने अस्वीकार किया था। स्त्री की कल्पना / मान्यता भारतीय परिप्रेक्ष्य में संपत्ति के रूप में होने के

कारण उसके रक्षा की जिम्मिदारी अक्सर पुरूषों पर सौंपी गई और इसके आड में स्त्रि की पराधिनता को परावलंबित्व में तब्दिल किया गया । उसके पर इस विश्वास के साथ काटे की वह न इस षडयंत्र को समझ पाई और न ही इसका विरोध कर पाई । प्रस्थापित वर्ग ने बडी चालाकी से जिस शोषण व्यवस्था के द्वारा स्त्रियों के शोषण की व्यवस्था की, उसके परवरिश, संवर्धन, निर्वाह की जिम्मेदारी भी स्त्रियों के हाथ सौंपी और दूर्भाग्य, इस जिम्मेदारी को वह गौरव के साथ निभाती रही और अन्याय की व्यवस्था का मोहरा बनी रही।

भारतीय समाज व्यवस्था छल, कपट की वास्तविकता को स्वीकारती है किंतु अपना असली चहरा छिपाकर लोगों के सामने ' वसुधैवकुटुंबकाम ' की भावना का प्रदर्शन करती है। भारतीय समाज व्यवस्था, धार्मिक मान्यताएँ, तत्वचिंतन, भगवान, भाग्य तथा व्यवहार एक ऐसा षडयंत्र है जो बाहर से लूभावना लगता है लेकिन भीतर जाने पर हम पाते हैं कि अंदर किच — काई — गंदगी के शिवाय कुछ भी नहीं है । स्त्रियों को देवी, माता, जननी कहकर उसकी पूजा की बात करने वाली हिंदू धर्म की मान्यताएँ एवं पुरूषसत्ताक मानसिकता ने स्त्री का अस्तित्व उपभोग की वस्तु से अधिक नहीं आंका । उसे किताबों, धर्मग्रंथों में मान — सम्मान देने की बात तो की लेकिन उसका पारिवारिक दर्जा पैर की जूती के समान रखा । भारतीय वर्चस्ववादी मानसिकता की यह बरबर सफलता है कि वे अपने लिए हितकर, श्रेयस्कर बाते, स्त्रियों के वाणी, दिमाग में उतार सके और स्त्रियाँ संबंधित वर्ग, जाति, मान्यताओं का प्रतिनिधित्व कर, उसे अगले पीढि में संस्कार रूप में उतारने के कार्य में संलग्न हुई । स्त्रियाँ शोषित, दमित, दलित होने के बावजूद अपने संबंधित वर्ग, जाति के हितों की रक्षक बनी और स्त्रियों की अपनी भूमिकाएँ अलग — अलग हुई।

भारतीय समाज व्यवस्था का बंटवारा श्रम के आधार पर नहीं बल्कि श्रम करनेवालों के आधार पर हुआ। यहॉ कई वर्ग, जातियॉ, उपजातियॉ बनीं और वह भी जन्म के आधार पर । जन्म माता अर्थात् स्त्री के उदर से होता है, इसीलिए डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर – स्त्री को जाति का प्रवेश द्वार मानते हैं। स्त्री, स्त्री अस्मिता के बजाय वर्ग और जाति की अस्मिता का प्रतिनिधित्व करती है। इसका स्पष्ट प्रमाण है, बाबासाहेब द्वारा लाए गए हिंदू कोड बिल का स्त्रियों द्वारा पिषेध किया जाना, जिसमें स्त्री के अधिकारों की बात की थी । अतः सारी स्त्रियों को दलित मानने के बावजूद उनके अस्मिता, अस्तित्व, विचारधारा में बडा अंतर देखा जा सकता है । भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्त्रियों के सरलता से दो विभाग किए जा सकते हैं – सवर्ण स्त्री, दलित स्त्री।

सवर्ण स्त्री एवं दलित स्त्री के मत – मान्यता, आचार – विचार, रहन – सहन, जाति – धर्म श्रेष्ठता आदि में स्पष्ट रूप से अंतर देख सकते हैं । दलित स्त्री जहॉ जाति, धर्म, समाज की व्यवस्था द्वारा शोषित – प्रताडित है । दलित स्त्री में इनके नकार की भावना एवं उसे ध्वस्त करने का भाव दिखाई देता है; वहॉ सवर्ण स्त्री इस व्यवस्था में श्रेष्ठत्व के भाव से भर, इस व्यवस्था के रक्षण में महती भूमिका निभाती है। दलित स्त्री जहॉ जाति के पीडा से गलितगात्र है, वहॉ सवर्ण स्त्री जाति अभिमान में दंग है । दोनों का पुरूषासत्तात्मक व्यवस्था में मानसिक, शारीरिक, यौन शोषण होने के बावजूद शोषण की स्थितियों, क्षेत्र, शोषण कर्ता तथा शोषण के रूप में भी अंतर देखा जा सकता है । सवर्ण स्त्री एवं दलित स्त्री दोनों भारतीय समाज व्यवस्था के अंग होने के बावजूद दोनों की स्थितियॉ, विचारधारा, व्यवहार परस्पर विरोधी दिखाई देती हैं । अतः स्त्री को दलित मानने के बावजूद सवर्ण स्त्री एवं दलित स्त्री के जीवन को स्पष्टता के लिए विभाजित कर देखना अधिक सुविधाजनक होगा।

३.३.१. सवर्ण स्त्री

सवर्ण स्त्री उर्चस्ववादी पुरूषमानसिकता का शिकार है, जिसने उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व को उभरने नहीं दिया । उसे जाति, धर्म, परंपराओं के जकडन में ऐसे जकडा कि उसे आत्मबोध होने की सहुलीयत ही नहीं दी गई । उसके आचार — विचारों को जाति एवं धर्म के अनुकूल बनाया गया और संस्कृति के नाम पर जिस शोषण व्यवस्था के आधार पर उसका शोषण हो रहा था, उसके रक्षण एवं संवर्धन की जिम्मेदारी उसी पर थोपी गई । सवर्ण नारी शोषित जीवन जीने के साथ ही अपने जाति, धर्म, श्रेष्ठता के लाभ भी उठाती है और उनके अनुकूल अपने विचार और व्यवहार भी बनाती है । उसके जीवन में आर्थिक या जीवन के अन्य अभावों का विशेष महत्व नहीं दिखाई देता । दलित नारी का शोषण जहॉ घर — परिवार, समाज, जाति — धर्म, संस्कृति, रूढी — परंपराओं के द्वारा होता रहा है, वहॉ सवर्ण स्त्री के शोषण का मुख्य केंद्र उसका घर — परिवार रहा है और उसके अपने सगे संबंधी ही उसके शोषक रहे है।

३.३.१.१. यौन शोषण

स्त्री जीवन का सबसे दारूण अंग रहा यौन शोषण । स्त्री के व्यक्तित्व, अस्मिता, गर्व को हरण करने के लिए भी उसके चरित्र, इज्जत को निलाम करने की, कुचलने की, लुटने की प्रवृत्ति बडे पैमाने पर पुरूष मानसिकता के चलते विकसित हुई । स्त्री को संपत्ति मानने के कारण तथा उसके रक्षण की जिम्मेदारी पुरूष पर होने के कारण पुरूष दांभिकता, अहंकार, प्रतिशोघ का मुआवजा भी स्त्रियों को ही चूकाना पडा । युद्ध तो

योद्धाओं ने खेले लेकिन उसका बहुत बडा मुआवजा स्त्रियों को भरना पडा । भारतीय समाज व्यवस्था में स्वतंत्र व्यक्तित्व के अभाव में, पुरूषाश्रित व्यवस्था के कारण स्त्री मात्र उपभोग की वस्तु भर रही और उपभोग का सीधे — सीधे संबंध यौन से जोडा गया । प्रस्थापित वर्ण में स्त्री उपभोग को प्रतिष्ठा की नजर से देखा गया और यौन शोषण को बढावा मिला । सवर्ण स्त्री का यौन शोषण बडे पैमाने पर घर की चार दीवारों के भीतर अपने ही कहे जानेवाले पुरूष के द्वारा हुआ, चाहे वो ससूर हो, देवर, जेठ, मामा या इनसे कनिष्ठ या वरिष्ठ परिवार जन ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की ' जिनावर ' कहानी की बिरजू की बहु का यौन शोषण मायके में मामा करता है तो ससूराल में ससूर उसका उपभोग लेना चाहता है । मामा ने छोटी आयु में ही उसका शोषण किया है और पैसे लेकर चौधरी के घर उसे ब्याहा है । चौधरी बहू का शोषण करना चाहता है लेकिन बहु के विरोध के सामने उसकी कुछ नहीं चलती और वह उसे मायके भेज रहा है । बहु के यौन शोषण के खिलाफ न सांस आवाज उठाती है और न ही मॉ । बल्कि दोनों उसे चूप रहने और स्थितियों को स्वीकारने की बात करती है । सास बहू को कहती है, ''इस घर का तो रिवाज ही है । औरत सिर्फ इस्तमाल की चीज है । इस घर में रिश्तों की मर्यादा का कोई मतलब ना है बहू । जिंदगी सुख — चैन से काटनी है तो समाझौता कर ले।''[५३] तो पती बिरजू उसे औरत है तो औरत बन के रहने की बात करता है । अर्थात् भोग की वस्तु है तो भोग की वस्तु बनने के लिए कहता है । यहॉ यौन शोषण के खिलाफ संघर्ष नहीं दिखाई देता बल्कि उसे जायज अर्थात् रिवाज होने की बात की गई है।

३.३.१.२. पारिवारिक स्थिति

शिक्षा, सत्ता एवं संपत्ति के अधिकर उच्च वर्ग के हाथ में होने के कारण उनकी पारिवारिक स्थिति बेहतर एवं सुविधाभोगी रही है, सवर्ण नारी का निवास ऐसे ही परिवार में होने के कारण उसकी पारिवारिक स्थिति संपन्न, सुविधाभोगी एवं सुखवस्तु परिवार की रही है । पुरूषसत्ताक मानसिकता के दुष्प्रभाव का शिकार होने के साथ ही इस वर्ग की स्त्री को उस वर्ग की सुविधाओं का लाभ भी मिला है । उच्च वर्ण, वर्ग, जाति की सुविधाएँ मिलने से, उसे परिवारिक वातावरण में पलने से तथा सुरक्षित रहने की आदत ने उसे आत्मबोध के प्रति अधिक सचेत नहीं रहने दिया । पारिवारिक संपन्नता के कारण ही सवर्ण स्त्री ' स्त्री अस्मिता ' के बजाय वर्ग अस्मिता से संचलित होती है । पारिवारिक सुरक्षितता, संपन्न वातावरण ने उसे दब्बू, अपाहिज के साथ ही जाति, रूढि, परंपरा के प्रति अधिक कट्टर बनाया।

' जिनावर ' कहानी की बिरजू की बहू की सांस पारिवारिक सुरक्षित वातावरण के चलते दब्बू और कमजोर हुई है और अपनी बहु को भी वह वैसी ही सीख देना चाहती है । बहू की मॉ भी पारिवारिक सुरक्षा के लिए अपने भाई के बेटी पर किए अत्याचार को नजर अंदाज करती है। ' सलाम ' कहानी के कमल उपाध्याय की मॉ, ' कहॉ जाए सतीश? ' कहानी की मिसेज पंत, ' जूठन ' आत्मकथा की मुंबई स्थित मिसेज कुलकर्णी जाति तथा उसके नियमों को कट्टरता से पालने वालो सवर्ण महिलाएँ है । ' कुडाघर ', ' कहॉ जाए सतीश? इन कहानियों के सवर्ण परिवारों ने घर किराए पर दिए हैं । ' कुडाघर ' कहानी की घर मालकीन अजब सिंह की पत्नी सुमित्रा से कहती है, '' बात क्या करना है ....

कहीं भी जाके मरो .... हमारा मकान खाली करो. .. ''[५४] यहॉ पारिवारिक स्थिति का घमंड, एवं अहंकार स्पष्ट रूप से दीखाई देता है ।

३.३.१.३. जातिभेद

दुर्भाग्य से कहना पडता है कि भारतीय स्त्री जीवन जिस जाति, धर्म एवं पुरूषसत्ताक मानसिकता के कारण दुर्गति को प्राप्त हुआ उसे सवर्ण स्त्री नकारने के बजाय समर्थन में खडी हो जाति है । वह जाति, धर्म की मान्यताओं को कट्टरता से मानना अपना अधिकार मानती हैं और अन्यों से भी यहीं अपेक्षा करती है । यहॉ कभी — कभार सवर्ण पुरूष समझौते के लिए तयार दिखाई देता है लेकिन सवर्ण स्त्री की भूमिका बडी पूरातनवादी रही है । सवर्ण स्त्री स्वयं जाति के समर्थन में तो खडी रहती ही है साथ ही अपने नए पीढि को भी बांध रखने का प्रयास करती है । सवर्ण स्त्री का यह वर्तन निसंदेह जाति गर्व की भावना से परिचालित है, जिसमें जाति श्रेष्ठता के लाभों का अपना विशेष महत्व है । वह जाति समर्थन के सभी लक्षणों छुआ —छूत, उॅच — नीचता, जाति अहंकार, रूढि — परंपरा, दलित द्वेष, धार्मिक प्रथाओं का न केवल समर्थन करती है बल्कि उन्हें सक्ति से निभाती भी है। सवर्ण स्त्री की यह भूमिका स्त्री अस्मिता एवं स्त्री संघर्ष के लिए हानिकारक रही है । वह जाति, धर्म समर्थन के सामने अपने स्त्री व्यक्तित्व की गरीमा का भी खयाल नहीं करती ।

'कुडाघर' कहानी की घर मालकीन केवल इस बात से खफा होकर अजब सिंह के परिवार को घर से निकालना चाहती है कि वह एस. सी. है । वह अपने अनुभव से भी बडा जाति को मानती है और जातिभेद

के समर्थन की भावना के चलते उन्हे घर से निकालती है। ' जूठन ' आत्मकथा की मिसेज कुलकर्णी अपने घर आनेवाले कांबले, जो एस. सी. है, उनके लिए अलग बर्तन का प्रबंध कर जातिभेद का निर्वाह करती है । ' सलाम ' कहानी के कमल उपाध्याय की मॉ दलित हरीश के घर आने पर उसे गालियॉ देकर घर से निकाल देती है तो उसके जाने पर घर गंगाजल से साफ कर अपनी जातीय अस्मिता का परिचय देती है । ' कहॉ जाए सतीश? ' कहानी की मिसेज पंत जो एक बच्ची की माता है, अपने मातृसुलभ भावना की अवहेलना कर जातिभेद का निर्वाह करते हुए सतीश को अपने घर से देर रात निकलने के लिए मजबूर करते हुए कहती है, '' मैं कुछ नहीं जानती । उससे कहो वह इसी वक्त चला जाए ... इतने दिन अपनी जात छिपाकर रहा ... यही क्या कम है । ''[५५] सवर्ण नारी के उपर्युक्त रवयै परिवर्तन के प्रतिकूल है किंतु समय के साथ धीरे –धीरे उनमें परिवर्तन आने लगा है, यह एक शुभ संकेत माना जा सकता है।

३.३.१.४. उपेक्षाभाव

पूरातन के प्रति गर्व एवं परिवर्तन के प्रति उपेक्षाभाव सवर्ण स्त्रियों में देखा जा सकता है । धर्म, धार्मिक मान्यताऍ, संस्कृति, प्रथाऍ, स्त्री प्रतीमा, स्त्री प्रतिष्ठा की खोखली धारणाऍ, जाति श्रेष्ठता के प्रति गहरी श्रद्धा होने के कारण सवर्ण स्त्री में इन धारणाओं के खिलाफ परिवर्तन की गुंजाईश के प्रति उपेक्षाभाव है। उसके मन में दलितों के प्रति, उनके सुधार के प्रति शिक्षा अर्जन के प्रति स्पष्ट रूप से उपेक्षाभाव देखा जा सकता है । दुर्भाग्य की बात यह है कि यह उपेक्षा भाव उसके अपने विचार से, अनुभव से नहीं पनपा बल्कि जाति श्रेष्ठता के अहंकार से जन्मा है । सवर्ण स्त्री भी अज्ञानी होने से तथा मानसिक एवं बौद्धिक रूप से उर्चस्ववादी

मान्यताओं की गुलाम होने से तथा सुविधा प्राप्त वर्ग से होने के कारण निम्न वर्ण के प्रति उसमें उपेक्षाभाव पाया जाता है । उसकी एक खामी यह भी रही कि वह दलित स्त्री के समान स्थितियों का निरपेक्ष चिंतन, आकलन नहीं कर पाई ।

' सलाम ' कहानी की कमल उपाध्याय की मॉ दलित हरीश के शिक्षा, योग्यता की उपेक्षा कर उसकी जाति को महत्व देती है । ' कहॉ जाए सतीश? ' कहानी की मिसेज पंत जो सतीश को अपने बेटे के समान मानती है, उसके स्वभाव, गुण, शिक्षा के बजाय उसके जाति को प्रमुखता दे उसकी उपेक्षा कर अपने घर से निकाल देती है । ' कुडाघर ' कहानी की घर मालकीन जिसके अच्छे संबंध है अजब सिंह के परिवार से, वह भी जाति पता चलने पर उनकी उपेक्षा करती है । ' जूठन ' आत्मकथा में आई कई सवर्ण महिलाएॅ दलितों की उपेक्षा करते हुए देखी गई है । हिरम के बारात में जाने पर वहॉ की भी सवर्ण महिला अपनी भडास, दलितों के प्रति की उपेक्षा को जाहीर करते हुए कहती है, '' कितना बी पढ लो .... रहोगे तो चूहडे ही ''[५६] सवर्ण स्त्रियॉ जो सवर्ण पूरूषों, धर्म के शोषण का शिकार बनी उनमें भी दलितों के प्रति उपेक्षाभाव देखा जा सकता है । अशिक्षित तहिलाएॅ ंतो खैर लेकिन सुशिक्षित महिलाएॅ भी योग्यता के बजाय जाति संस्कार को महत्व दे रही है – सलाम, जूठन, कहॉ जाए सतीश? की नारीयॉ ।

३.३.१.५.अपने खोल में सिमटी

पारिवारिक सुरक्षितता ने सवर्ण स्त्री को आत्ममुग्ध बनाया । उसे किसी बात से कोई मतलब नहीं रहा । परिवार, जाति एवं धर्म की

मान्यताओं का अंगीकार कर स्वयं के जीवन की सुख – सुविधाओं को निश्चित करना ही जैसे उसके जीवन का लक्ष्य रहा है । वह अन्याय को ऑखे मुंद देखती है किंतु उसका विरोध नहीं करती । कई बार अन्याय, शोषण की व्यवस्था को उसकी मौन संमती भी रहती है । पुरूषसत्तात्मक व्यवस्था में अपनी सुरक्षितता के लिए वह वर्चस्ववादी मानसिकता को न केवल अपनाती है बल्कि बढावा देने का काम करती है । उससे किसी का नुकसान हो या फायदा उससे उसे मतलब नहीं । वह अपने खोल में सिमटी स्वयं के सुरक्षितता एवं बचाव के बारे में आधिक सचेत रहती है । सवर्ण स्त्रियों की इसी मानसिकता ने उन्हें लंबे समय तक पराश्रित रखा । इस संदर्भ में दलित स्त्री का व्यक्तित्व सवर्ण स्त्री के व्यक्तित्व से अधिक उज्ज्वल एवं स्वयंपूर्ण है ।

‘ ग्रहण ’ तथा ‘ विरम की बहू ’ कहानी की बहू अपने मॉ बनने की लालसा तथा उसके अभाव में परिवार से बेदखल होने की संभावनाओं के चलते वह दलित पात्र रमेसर से संभोग करती है और गर्भ धारणा के बाद उसकी ओर देखती तक नहीं । वह चाहती तो रमेसर के रोजी–रोटी की समस्या हल कर सकती थी लेकिन ऐसा नहीं होता । ‘ कुडाघर ’ तथा ‘ कहॉ जाए सतीश? ’ कहानी की सवर्ण नारियॉ अपनी खोल में ऐसे सिमटी है कि उन्हें औरों का दूख, तकलिफ, परेशानियॉ देख ही नहीं पाती और अपने किराएदार दलितों को जबरदस्ती घर से निकाल देती है । हद तो ‘ जिनावर ’ कहानी की बिरजू की बहू की सांस तथा मॉ करती है जो सुख और बिना तकलिफ की जिंदगी जीने की लालसा में हर बात से समझौता करने के लिए तयार है। सांस बहू को ससूर के साथ संबंध रख समझौता करने को कहती है तो मॉ हालात के हाथों मजबूर हो, ‘‘... दस साल की भी नहीं थी कि मामा ने इस अबोध शरीर को बरबाद कर दिया था । बहुत रोई – चिल्लाई थी ... लेकिन कोई सूनने वाला नहीं

था... मॉ ने भी मुझे ही समझाने की कोशिश की थी। ...''[५७] सवर्ण स्त्री सुरक्षित जीवन जीने की चाह में अपनी अस्मिता की बलि चढाती है और निश्चित दायरे में सिमटा जीवन जीने के लिए बाध्य होती है।

३.३.१.६. छुआ—छूत

छुआ — छूत वह भी अपने समान ही दिखने वाले मनुष्य के प्रति करना किसी भी समाज की घृणित भावना की तीव्रता को जताता है । सवर्ण नारी जो भारतीय धर्म में दलित ही है तथा कई धार्मिक अनुष्ठानों में अछूत ही है । इसके बावजूद उसका दलितों के प्रति का रवैया अच्छा नहीं रहा है । वह पूर्ण रूप से धार्मिक धारणाओं में विश्वास रखती है और छुआ — छूत, उॅच — नीचता को इमानदारी से निभाती है । शहरी सवर्ण नारी में छुआ — छूत के धरातल पर काफी सुधार आया हुआ दृष्टिगोचर होता है लेकिन ग्रामीण तथा अनपढ, अज्ञानी सवर्ण नारियों का बर्ताव पूरातनवादी ही दिखाई देता है । वे आज भी अपनी मान्यताओं को निभाने के प्रति दूराग्रही है । वह अपनी मान्यताओं पर वैज्ञानिक दृष्टि से न सोचना चाहती है, न सूनना चाहती है, वह अपनी थोती श्रेष्ठता के मोह में छुआ — छूत जैसी गलिच्छ मान्यता का भी निर्वाह करती है ।

आत्मकथा ' जूठन ' के फौजा सिंह की अम्मा ओमप्रकाश वाल्मीकि के हाथ पर रोटियॉ इतने उपर से डालती है कि कहीं स्पर्ष न हो जाए । ' सलाम ' कहानी के कमल उपाध्याय की मॉ छुआ — छूत को मानती है और उसके निर्वाह के लिए हरीश को गालियॉ दे घर से भगाती है और घर गंगाजल छिडककर पवित्र करती है। ' अम्मा ' कहानी की मिसेज चोपडा भी अम्मा के साथ छुआ — छूत बरतती है और उसके चाय

का कप अलग रखती है। ' कहॉ जाए सतीश? ' कहानी की मिसेज पंत जिसकी बेटी ने सतीश को राखी बांधी थी, वह सतीश की जाति पता चलने पर उसके कपडों से भी छुआ – छूत बरतती है, '' आंगन में बंधे तार पर सतीश की पैंट – कमीज सूख रही थी । अंदर जाते समय मिसेज पंत कपडों से छू गई । मिसेज पंत के शरीर में बिजली – सी कौंध गई । जैसे कोई गलीज चीज शरीर को छू गई हो ।... बॉस से धकेलकर कपडों को आंगन के एक कोने में कूडे – करकट की तरह फेंक दिया ।''[५८] इस प्रकार सवर्ण महिलाओं का व्यवहार पूरातनवादी रहा है ।

३.३.१.७. चेतना

चेतना से अभिप्राय मात्र किसी निश्चित विचार धारा से जूड उसका वाहक बनने तक ही सीमित नहीं है । अपने आस – पास घटित घटनाओं की सही परख एवं उससे उचित – अनुपचित के हिसाब से उचित के प्रति सुधारात्मक कृति व्यक्ति के चेतना का ही परिचायक होता है । यहॉ सवर्ण स्त्रियों के अपने अस्मिता, व्यक्तित्व की रक्षा की लडाई, नारी सम्मान के प्रति की उसकी भावनाएँ, शोषित वर्ग के अधिकारों के लिए संघर्ष तथा शोषकों के खिलाफ मोर्चा आदि बाते सवर्ण नारी के सुधारवादी चेतना की परिचायक हो सकती है । दलित साहित्य में सवर्ण नारी के व्यवहार अधिकतर व्यवस्था पोषक ही रहे है। अत: चेतना से युक्त सवर्ण नारी का चित्रण अभावात्मक ही हुआ है।

' सपना ' कहानी के ऋषि की पत्नी जो जाति से ब्राह्मण है, दलित गौतम के परिवार के साथ बिना छुआ – छूत, उॅच – नीचता के मानव सुलभ व्यवहार करती है अर्थात् वह पूरातनवादी नहीं है । अपनी

अस्मिता के लिए संघर्ष का पैतरा अख्तियार करने वाला तथा उसके लिए जोखिम उठाने की क्षमता रखने वाला एक मात्र पात्र दिखाई देता है — ' जिनावर ' कहानी की ' बिरजू की बहू '। वह यौन शोषण के पारिवारिक रिवाज का विरोध करती है । पति और सांस की बातों का विरोध करते हुए ससुर की यौन शोषण की लालसा का पूरजोर विरोध करती है, '' चौधरी ... मेरा ससुर ... ससुर नहीं खसम बणना चाहवे था मेरा ... मैंने विरोध करा तो मुझे मारा —पीटा गया । तरह — तरह के जुल्म किए ... फिर भी मैंन्ने हार नी मानी तो निकाल बाहर किया ।''[५९] ' बिरजू की बहू ' में नारी चेतना विद्यमान है। वह अपनी इच्छा से एवं सही — गलत को समझ निर्णय लेती है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के कथा साहित्य में सवर्ण स्त्री जीवन को उसके स्वभाव, आचार — विचार एवं मान्यता के अनुकूल चित्रित किया गया है । सवर्ण नारी के शोषण का क्षेत्र उसका परिवार है और शोषक सगे — संबंधी । सवर्ण नारी की भूमिका शोषित एवं शोषक दोनों प्रकार की रही है । अधिकतर सवर्ण नारियॉ जाति अहंकार से ग्रसित है और समाज के परिवर्तन को समझने में एवं अपनी भूमिका तय करने में सक्षम नजर आती है । वाल्मीकि सवर्ण नारी की स्वाभाविक, वास्तविक स्थिती को चित्रित करने का प्रयास करते हैं, जो समय के अनुकूल है । वे शाबासी से अधिक वास्तविकता को महत्व देते हैं ।

३.३.२. दलित स्त्री

' दलित स्त्री ' एक तो स्त्री है, दूसरी दलित है अत: उसके हिस्से दोहरी मार आई है । स्त्री होने के नाते पुरूषमानसिकता की सारी

परेशानियॉ को वह उठाती है साथ ही दलित होने के दुख भी सहती है । सवर्ण नारी का शोषण जहॉ चार दीवारों के भीतर होता रहा है, वहॉ दलित नारी के शोषण की कोई पारावार नहीं । वह घर, खेत – खलिहान, मिल – कारखानों, दफ्तरों आदि सभी जगह प्रताडित होती रही है । दलित होने के नाते पारिवारिक अभाव, छुआ – छूत, आर्थिक तंगी, श्रम, उॅच –नीचता का शिकार उसे होना ही पडता है । दलित पुरूष जो सामाजिक, सांस्कृतिक दबाव के चलते दब्बू एवं श्रमाधिकता के कारण व्यसनांध हुआ है, उससे भी दलित स्त्री को प्रताडित होना पडता है । सवर्ण समाज जहॉ दलितों को छूने से भी परहेज करता है, दलित स्त्री को वह हरदम ललचाई ऑखों से देखता रहता है और उसे निगलने की कोशिश करता है । अतः दलित स्त्री के लिए सुरक्षित स्थान की नितांत कमी है । दलित स्त्री के लिए जो ससुराल के हालात है, वही मायके के हालात है, इसलिए उसेके लिए सुरक्षित स्थान ही नहीं है । अतः वह शोषण और अत्याचार का जीवन जीने के लिए अभिशप्त है ।

३.३.२.१. यौन शोषण

दलित नारियों का यौन शोषण भारतीय उच्च वर्गीय, सभ्य समाज की घृणित वास्तविकता है। वह जाति – धर्म के बंधनों को अपने फायदे के लिए कडाई से अपनाता है, मगर अछूत दलित स्त्री को रौंदने, मसलने में वह जाति –धर्म की लकिरों से छूट लेता है । दलित स्त्री का यौन शोषण घर और बाहर दोनों जगह होता रहा है । घर से बाहर उसकी दयनीयता, असहायता, आर्थिक अभाव, पारिवारिक स्थिति का नाजायज फायदा उठाने वाली एक व्यवस्था कार्यरत है । यह व्यवस्था दलित नारी

का यौन शोषण करता न केवल अपना अधिकार मानती है बल्कि उसमें गर्व भी महसूस करती है।

संपत्ति के सारे साधन उच्च वर्ग के हाथों में कैद होने के कारण दलितों को अपनी रोजी – रोटी के लिए महनत करना अनिवार्य था । काम करने की जगहे दलित शोषण के अड्डे बने रहे । दलित स्त्री का यौन शोषण भी बडे पैमाने पर काम की जगहों पर ही हुआ । सभ्य समाज ने दलित महिलाओं के यौन शोषण के लिए कई निर्लज्य एवं कुत्सित प्रथाओं को जन्म दिया और उसे बेहयाई से निभाया भी । सभ्य समाज को इन रस्मों – रिवाजों से शर्म महसूस नहीं होती, उन्हें तो दलितों को छूने, उनके साथ अच्छाई से पेश आने में शर्म महसूस होती है । मुँह जूठाई, देवदासी प्रथा दलित महिला के यौन शोषण के नायाब तरिके है । दलित नारी के यौन शोषण की घटनाएँ स्वाभाविक, भावनिक उछाल न होकर सोचा – समझा, सुनियोजित षडयंत्र होता है, जिसे बेरहमी से अंजाम दिया जाता है ।

' जिनावर ' कहानी की दलित किसनी को अगुआ कर चौधरी लगातार तीन महिने उसका यौन शोषण करता है । सभी जानते हैं किसनी चौधरी के हवेली में है लेकिन कोई भी इसके खिलाफ आवाज नहीं उठाता । चौधरी की बेटी सरोज मायके आने के कारण किसनी को मारकर गांव के जोहड में फेंक दिया जाता है । ' अम्मा ' कहानी की अम्मा पर मिसेज चोपडा के साथ नाजायज संबंध होने वाला विनोद हाथ डालता है लेकिन अम्मा के विरोध के सामने उसकी दाल नहीं गलती । ' यह अंत नहीं ' कहानी की बिरमा पर भी गांव के चौधरी तेजभान का बेटा सचिंदर अति करने की कोशिश करता है तो ' खानाबदोश ' कहानी की किसनी

सुबेसिंह के जाल में फंसी है। सुबेसिंह का विरोध करने के कारण मानो और सुकिया को काम से हाथ धोने पडते हैं ।

यौन शोषण की घृणित व्यवस्था का पर्दाफाश करनेवाली ' जंगल की रानी ' कहानी दलित स्त्री के शोषण की व्यवस्था को उजागर करती है । स्कूल का मुआयना करने गए डिप्टी साहब दलित कमली पर आसक्त होते है । कमली को ' ग्रामीण महिला प्रशिक्षण शिवीर ' में भेजने का आग्रह वे मास्टर वानखेडे से करते हैं । और शहर आई कमली का यौन शोषण करने का प्रयास डिप्टी साहब, विधायक, एस. पी. करते हैं । डिप्टी साहब के वहशीयत का चित्रण वाल्मीकि निम्न प्रकार करते हैं, '' डिप्टी साहब शहर लौट आए थे । कमली उनकी चेतना पर छाई हुई थी । वे हर हालात में उसे पाने के लिए लालयित थे । उनके भीतर का वहशी तेंदुआ घात लगाकर बैठा था । शिकार को फंसाने के लिए ग्रामीण महिला प्रशिक्षण शिविर का जाल बूना गया था । ''[६०] इस प्रकार दलित स्त्री का यौन शोषण एक सुनियोजित षडयंत्र रहा है।

३.३.२.२. पारिवारिक स्थिति

बहुतायत दलितों की परिवारिक स्थिति दयनीय एवं अभावों से भरी हुई है । शिक्षा के अंगीकार ने उसमें कुछ हद तक परिवर्तन लाया है किंतु यह प्रक्रिया काफी धीमी है । आज भी गांवों और शहरों की झूग्गी – झोपडियों में रहनेवाला दलित समाज आर्थिक तंगी के चलते मन मसोसकर जीता है । जीवन के अभावों को भरने का जरिया उसके पास नहीं है । पढे – लिखे दलित समाज के सामने घर की समस्या मुॅह बाएं खडी है । दलितों की खस्ताहाल स्थिति का परिणाम दलित महिलाओं के जीवन पर

भी हुआ है । इसी कारण वह दलित पुरूष के कंधे – से – कंधा मिलाकर काम करती दिखाई देती है । पारिवारिक स्थिति, बच्चों की परवरिश, पढाई आदि ने दलित स्त्री को दयनीय एवं मजबूर बना दिया है दडबेनुमा घर, चिपटे गिलट के बर्तन, फटे – पुराने कपडे, खाने के अभाव, आर्थिक तंगी आदि दलित महिलाओं की पारिवारिक स्थिति रही है।

' अम्मा ' कहानी की अम्मा के पती रिटायर्ड हो चुके है तथा बच्चों की पढाई एवं घर की सारी जिम्मेदारी अम्मा के कंधों पर है। बीमार सांस तथा परिवार चलाने के लिए अम्मा को कई ठिकानों पर सफाई का काम करना पडता है। लेकिन अम्मा की यह कोशिश भी रही है कि उसके बाद घर का कोई ठिकानों पर काम नहीं करें ।

' यह अंत नहीं ' कहानी की बिरमा तथा उसकी मॉ परिवार के दयनीय स्थिति के कारण सवर्णों के खेतों पर काम करने जाते हैं । ' जंगल की रानी ' कहानी की कमली की पारिवारिक हालात ऐसे है कि वह अपनी पढने की लालसा तक पूरी करने में असमर्थ है । खानाबदोश, ग्रहण, बिरम की बहू, कहॉ जाए सतीश? आदि कहानियों की पारिवारिक स्थिति दयनीय तथा खस्ताहाल है; यहॉ दो वक्त की रोटी का चिंता बहुत बडी समस्या है, तो कुडाघर, सलाम, सपना, घूसपैठिए, प्रमोशन आदि परिवार जीवनावश्यक वस्तुओं की पूर्ती में सफल रहे है । मैं ब्राह्मण नहीं हूॅ, अंधड, घूसपैठिए आदि कहानी के कुछ परिवार सुविधा प्राप्त परिवार है किंतु अधिकतर दलित परिवार की स्थिति दयनीय ही दृष्टिगोचर होती है।

३.३.२.३ विरोध

खस्ताहाल जीवन, सामाजिक उपेक्षा, पारिवारिक दयनीयता के कारण दलित स्त्री के पास बचाने लायक कुछ है तो वह है — अस्मिता, सम्मान एवं इज्जत । इसलिए दलित नारी में विरोध की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है । खोने के लिए तथा खराब होने के लिए उसके पास स्वयं से अधिक मूल्यवान कुछ नहीं । इसलिए अपने स्वत्व को बचाने के लिए वह विरोध को हथियार बनाती है । दलित स्त्री में विरोध की भावना व्यक्तिगत एवं व्यवस्थाजन्य दोनों प्रकार की है । महनत, परिश्रम के बावजूद अन्य तबकों से हेय हालात, सामाजिक गैरबराबरी, शोषण की नीतियॉ दलितों को नीचा दिखाने के करतब आदि के कारण दलित स्त्रियों में समाज के प्रति घृणा पनपती है, जिसकी अभिव्यक्ति विरोध के मुखर स्वर में होती है । इसी कारण इनके विरोध में अधिक बौखलाहट, क्रोध, गालियॉ दिखाई देती है । सवर्ण समाज ने दलित पुरूषों की कार्यवाही का बदला लेने के लिए भी दलित स्त्री को ही निशाना बनाया । अतः सवर्ण मानसिकता एवं नीतियों से वाकीफ दलित स्त्री सवर्णों की कार्यवाही का यथाशक्ति विरोध करती है।

' अम्मा ' कहानी की अम्मा विनोद द्वारा यौन शोषण की कोशिश करने पर वह उसका विरोध करती है, उसे झाडू से पीटते हुए मिसेज चोपडा से कहती है, '' भैण जी इस हरामी के पिल्ले से कह देणा ... हर एक औरत छिनाल ना होवे है। ''[६१] ' खानाबदोश ' की मानो अपने यौन शोषण की साजिश को समझ, सुबेसिंह की यौन शोषण की कोशिश को नाकाम कर भट्टा छोडने का निर्णय लेती है । ' यह अंत नहीं' कहानी की अनपढ बिरमा चौधरी तेजभान के बेटे सचिंदर का पूरजोर विरोध करते हुए उसके जांघों के बीच लात का तगडा प्रहार करती है, साथ

ही किसन की सहायता से उसे गांव के पंचायत के सामने खडा करती है। ' जंगल की रानी ' कहानी की नायिका दलित कमली यौन शोषण की वहशी व्यवस्था का विरोध करते हुए अपनी जान गंवाती है लेकिन शोषण की व्यवस्था को कामयाब नहीं होने देती। दलित नारी की जीवटता, संघर्ष तथा विरोध की प्रवृत्ति, अस्मिता की रक्षा करने की लडाई, उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व निर्माण करती है । वह स्वतंत्र व्यक्तित्व की होने के कारण सवर्ण पुरूष या पति या दलित पुरूष को भी आडे हाथों लेने की क्षमता रखती है।

३.३.२.४. श्रम भागीदारी

दलित नारी जीवन का यह एक गौरवपूर्ण तथ्य है कि वह अपने उदर –निर्वाह हेतु पुरूषों पर आश्रित नहीं है । वह अपनी क्षमता, योग्यता तथा शक्ति के अनुकूल काम करने में शर्मिंदगी महसूस नहीं करती है । पारिवारिक समस्यांओ को हल करने में, आर्थिक तंगी से उभरने में दलित स्त्री की विशिष्ट भूमिका होने के कारण, पारिवारिक निर्णय प्रक्रिया में उसके मतों का आदर किया जाता है । परिश्रम ने उसे पराश्रित नहीं होने दिया । इसी परिश्रम की क्षमता के कारण उसकी दलित पुरूष से अलग, स्वतंत्र सत्ता है, स्वतंत्र व्यक्तित्व है । दलित नारी दलित पुरूष के कंधे से कंधा मिलाते हुए अपनी श्रम भागीदारी का लोहा मनवाती है । पारिवारिक खस्ता आर्थिक दशा के कारण दलित स्त्री घर और बाहर दोनों जगह श्रम करने के लिए अभिशप्त है । इस रूप में दलित स्त्री की श्रम भागीदारी दलित पुरूषों से बीस है, उन्नीस नहीं । वह एक साथ कई जिम्मेदारियों का निर्वाह करने का सामर्थ्य रखती है, इसका कारण है परिश्रम के कारण हुआ दुनिया का ज्ञान तथा स्वतंत्र अस्तित्व से प्राप्त आत्मविश्वास।

' खानाबदोश ' कहानी की मानो जो नई — नवेली दूल्हन है अपने पति सुकिया के साथ ईंट भट्टे पर काम करने आई है । वह भट्टे का भी काम करती है और गृहस्थी का भी । 'सलाम' कहानी के हरीश की सांस गांव के सवर्णों के घर काम करने जाती है। ओमप्रकाश की माताजी भी सवर्णों के घर काम करती है। ' मैं ब्राह्मण नहीं हूँ ' कहानी की सूनिता पढ —लिखकर बॅक मे नोकरी करती है । ' अम्मा ' कहानी की अम्मा अपने परिश्रम के बलबूते पर पूरे परिवार की जिम्मेदारी उठा रही है । ' हत्यारे ' कहानी का कल्लू सुअर की बली की समस्या का निदान पत्नी से पूछ कर करता है अर्थात् निर्णय प्रक्रिया में उसके मत का महत्व है । इस प्रकार दलित नारी श्रम भागीदारी पुरूषों से कहीं भी कम नहीं है। श्रम प्रतिष्ठा के खोखले दावे करनेवाले भारतीय समाज अगर कहीं श्रम प्रतिष्ठा देखी जाती है तो वह दलितों में ।

३.३.२.५. दयनीयता

जीवन के अभाव, कभी न खत्म होनेवाला शोषण, आत्मविश्वास को तोडनेवाली सामाजिक व्यवस्था, खून का कतरा — कतरा चूसनेवाले हाड — तोड श्रम, भूख तथा भविष्य की चिंता ने दलित स्त्री को दयनीय बनाया है । यह दयनीयता उसके हालात एवं परिस्थिति के मार से उभरी है । दयनीयता से तात्पर्य जी हूजूरी से नहीं, लाचारी, बेचारगी से है । दयनीयता का भाव परिस्थिति एवं व्यवस्था के अन्याय — अत्याचार के चलते भविष्य की कल्पनाओं को टूटते देख, बिखरते देख, वांछित के हाथ से फिसलते देख जो गहरी उदासी मन में भर व्यक्ति मायूस होने लगता है, अर्थात् उसमें दयनीयता के भाव उभरने लगते हैं । दयनीयता के हालात में व्यक्ति संघर्ष से पलायन नहीं करता, हार नहीं मानता बल्कि संघर्ष की

अधिकता से थका हुआ महसूस करता है । उसकी दयनीयता जैसे पारिवारिक स्थितियों से स्पष्ट हो जाती है, उसी प्रकार उसकी बेबसी, मायूसी से प्रकट होती है। कुछ न कर पाने का भाव दयनीयता ही है।

' कुडाघर ' कहानी की अजब सिंह की पत्नी घर मालकीन द्वारा घर से निकलने की बात करने पर दयनीयता का अनुभव करती है । मालकीन के अचानक, अकस्मात् हमले ने उसे दयनीय बनाया है । जिसके चलते भविष्य के बिखरने के आसार नजर आने लगते है । ' सलाम ' कहानी के दलित बल्लू रांघड के आंतक के सामने दयनीय है । ' खानाबदोश ' कहानी की मानो परिस्थितियों तथा सुबेसिंह के ज्यादतियों के आगे दयनीय है, जो भट्टा छोडकर जिंदगी के तलाश में अपरिचित राह पर निकल पडती है । परिस्थिति, समाज, अर्थ तथा अपने परिवार के कारण दयनीय हुई ' अम्मा ' का चित्रण लेखक निम्न प्रकार करते हैं, '' सण जैसे रूखे बाल, झार्रियों से भरा चहरा, मिचमीची ऑखोंवाली अम्मा, वक्त की मार ने जिसकी एक ऑख को छोटा कर दिया है। और जिसके सामने के दात टूटे हुए है। ...''[६२] इस प्रकार दलित नारियों की स्थिति दयनीय है, जो उसके रहन — सहन, घर — परिवार, चहरे एवं बदन तथा स्वभाव — व्यवहारें से स्पष्ट रूप से दिखाई देती है ।

३.३.२.६.परिवर्तन आग्रही

दलित स्त्री परिस्थिति एवं व्यवस्था के अन्याय, अत्याचार तथा शोषण से पीडित होने से उसमें प्रस्थापित व्यवस्था के प्रतिक्रोध, तिरस्कार व्याप्त है, जिसके चलते वह व्यवस्था परिवर्तन के लिए प्रयास करती है । दलित स्त्री व्यवस्था का शिकार होने के बावजूद वह व्यवस्था को अपने उपर हावी नहीं होने देती । दलित स्त्रियों में परिवर्तन का आग्रह मात्र व्यक्तिगत न होकर सामाजिक भी है तथा स्वकेंद्रित न होकर अपनी भावी

पीढि को लेकर भी वह चिंतित है । वह अपनी क्षमता से भी परिचित है इसलिए वह अपने क्षमता के अनुकूल व्यवस्था की जड, स्थिर मानसिकता पर प्रहार करती है । वह इस बात से भी वाकीफ है कि यह परिवर्तन एक झटके में, एक दिन में नहीं आएगा । दलित स्त्री की ऐसी समयोचित परिवर्तन की भूमिका दलित आंदोलन को शक्ति प्रदान करती है और सर्वजन हिताय की भावना को बल प्रदान करती है।

' अम्मा ' कहानी की अम्मा सवर्णों के घरों में जाकर गंदगी साफ करने का काम करती है, उसकी माली हालात बहुत दयनीय है इसके बावजूद वह अपने बेटी और बेटों को पढाती है । वह अपने बेटे बिसन से कहती है, '' बेट्टे ... बिसन ... तैन्ने और तेरे जातकों (बच्चे) ते सरम आवे ... इसलिए तो पढाया — लिखया । थारे सबके हाथ से झाडू — टोकरा छूडाया ... मेरे बाद इस घर की कोई बहू — बेट्टी ठिकानों में नहीं गई ...''[६३] ' यह अंत नहीं ' कहानी की बिरमा अपने उपर हुए अन्याय के खिलाफ पंचायत में आवाज उठाती है । पंचायत जो सवर्णों के हाथों की कटपूतली है, गुनहगार सचिंदर को मात्र पांच रूपयों का जूर्माना करती है, लेकिन इस न्याय को भी परिवर्तन की शुरूआत के रूप में देखते हुए बिरमा अपने भाई से कहती है, '' इस हार पर मुँह क्यों लटका रे हो। ये अंत ना है... तुम लोगों ने मेरे विश्वास कू जगाया है... इसे मरने मत देणा ''[६४] इस प्रकार दलित नारियों में परिवर्तन का आग्रह दिखाई देता है, जो दलित समाज के उत्थान के लिए नितांत आवश्यक है । इससे दलित वर्ग की सारी शक्ति परिवर्तन की गति को तेज करेगी तथा दलित स्त्री की भूमिका निसंदेह विशेष सराहनीय होगी।

३.३.२.७. चेतना

चेतना ही व्यक्ति की सजगता का परिचायक है । सजग व्यक्ति अपनी अस्मिता, अपने सम्मान के रक्षा के लिए जोखिम उठाता है क्योंकि वह जानता है कि बिना अस्मिता, चेतना, सम्मान के जीना मनुष्य की नहीं बल्कि पशू की आदत है । दलित समाज इस प्रकार का पशुवत जीवन जी चूका है । सदियों तक वह ऐसा निरूद्देश्य जीवन जीता रहा है परिणामतः जब से दलितों में चेतना जागृत हुई है तब से वे अपनी अस्मिता के लिए लडने लगे हैं । दलित स्त्री भी इसी का परिचय देते हुए अपनी मान – मर्यादा, इज्जत – अस्मिता की रक्षा के लिए अपनी जान की बाजी लगा देती है । वह समय की वास्तविकता, समाज की व्यवस्था, धर्म का पाखंड, पुरूषमानसिकता का षडयंत्र आदि से परिचित हो स्वचेतना से अन्याय – अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाने के लिए तयार रहती है।

दलित नारी चेतना के चलते नफे – नुकसान से अधिक उसकी उचित – अनुचितता की परवाह करती है । शिक्षा के कारण तथा अन्य कारणों से आए बदलाव को वह व्यर्थ गवाना नहीं चाहती । यह उसकी चेतना का ही परिचायक है कि वह अपने साथ समाज के उत्थान को अपना लक्ष्य बनाती ह ै। उसकी सचेतना ने उसे इस बात से वाकीफ कराया है कि जाति उसके विकास में बाधक नहीं, बाधक है वर्चस्ववादी मानसिकता अतः दलित नारी वर्चस्ववादी मानसिकता के खिलाफ संघर्ष का पैंतरा स्वीकारती है । ओमप्रकाश वाल्मीकि की ‘ अम्मा ’ कहानी दलित नारी का प्रतिनिधित्व करती ऐसी कहानी है जो दलित नारी अस्मिता के हर पहलू को समेटने की कोशिश करती है । अम्मा अपनी इज्जत पर हाथ डालने वाले विनोद की पीटाई करती है । अधिक मुआवजा देने के बावजूद

मिसेज चोपडा का ठीकाना बेचती है, हैसियत न होने के बावजूद बेटों और बेटी को पढाती है तथा अपने बेटे तथा पोते के गलत रवैये को फटकारती भी है । अम्मा गंदगी साफ करने का काम इमानदारी से करती है लेकिन उसके मन में इस काम के प्रति घृणा है इसलिए वह अपने परिवार के किसी भी सदस्य को इस काम में नही आने देती ।

' यह अंत नहीं ' कहानी की बिरमा चौधरी तेजभान के बेटे सचिंदर की बदसलूखी का सामना करती है । पहले तो वह उसे मारकर भगाती है और अपने भाई की सहायता से उसे पंचायत से सजा दिलवाने का प्रयास करती है । ' खानाबदोश ' की मानो अपने सम्मान एवं अस्मिता के खातिर पक्के घर के ख्वाब को अधूरा छोड देती है और सुबेसिंह का काम छोड देती है । ' मैं ब्राह्मण नहीं हूँ ' कहानी की सूनिता अपने परिवार के व्यर्थ, ओढे हुए ब्राह्मण होने के करतब को तार – तार करते हुए अपनी असली जाति का स्वीकार करती है । वह अपने पिताजी से कहती है, '' पापा ... आप बने रहिए ... श्रेष्ठ.... ब्राह्मण ... मिरासी से उॅचे । लेकिन मैंने कभी भी अपने आप को ब्राह्मण नहीं माना ... यह सच्चाई है।.....। मेरे लिए ब्राह्मण होना ही इंसान की श्रेष्ठता का प्रतीक नहीं है। यह एक भ्रम है जिसमें सभी उॅच – नीच का खेल खेल रहे है।''[६५] सूनिता पिताजी की आॅखे खोलते हुए अमित से शादी करने का फैसला लेती है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित जीवन को जीया – भोगा और समझा है । उनके दलित पात्र साहित्य की काल्पनिकता के बजाय समय की वास्तविकता का अंगीकार करते हैं। इसीलिए वाल्मीकि जी के साहित्य की घटनाएॅ, पात्र समीप होने का आभास उत्पन्न करते हैं । वाल्मीकि दलित स्त्री जीवन को बडी बारकी से चित्रित करते हैं । दलित

नारी की समस्याएँ, परेशानियाँ, उसके हनन की स्थितियाँ, उसका अज्ञान, श्रम भागिदारी, संघर्ष का रवैया तथा अस्तित्व की लढाई आदि को सुक्ष्मता एवं गंभीरता से चित्रित किया गया है। उनके साहित्य की दलित नारी अति आक्रमकता का चोला नहीं पहनती और न ही बदलाव के लिए काल्पनिक उछल — कूद मचाती है । ये नारियाँ सयंत किंतु समर्थ प्रतिक्रियाओं द्वारा अपनी उपस्थिति दर्ज कराती है।

संदर्भ

———————————————————

१. सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. ३३

२. सामाजिक चळवळी आणि अस्पृष्यता निवारण— सं रतेश बनसरेडे, पृ. ०६

३. सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. ९६

४. हिंदी दलित कथा—साहित्य अवधारनाएँ एवं वधाएँ—रजतरानी 'मीनू' पृ.१८

५. सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. ३५

६. घूसपैठिए — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. ७५

७. सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.

८. जूठन — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. २४

९. सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, प.

१०. जूठन — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. ४०

११.वही पृ. ४३

१२. सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, प. १७

१३.वही पृ. १२०

१४.घूसपैठिए — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. ९३

१५.सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. ६६

१६.वही पृ. १३०

१७.वहीं पृ. १३

१८.घूसपैठिए — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. २४

१९.सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. ६१

२०.घूसपैठिए — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. ८३

२१.सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. १९

२२.घूसपैठिए — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. ३७

२३.जूठन — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. २५

२४.सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. ११८

२५.वहीं पृ. ८६

२६.घूसपैठिए — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. १४

२७.सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. १२०

२८.वही पृ. ३६

२९.घूसपैठिए — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. १९

३०.वह पृ. ३५

३१.वही पृ. ३५

३२.वही पृ. ३७

३३.जूठन — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. ९३

३४.घूसपैठिए — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.६९

३५.वही, पृ. १५

३६.सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.१३२

३७.घूसपैठिए — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.५७

३८.वही, पृ. ५०

३९.सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.

४०.वही, पृ.११०

४१.घूसपैठिए — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.

४२.जूठन — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.११८

४३.सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.१५

४४.वही, पृ. ८६

४५.वही, पृ. १५

४६.घूसपैठिए — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.४८

४७.वही, पृ.८७

४८.वही, पृ.१९

४९.वही, पृ.१७

५०.वही, पृ.१४

५१.सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.८६

५२.वही, पृ.१८

५३.वही, पृ.९९

५४.घूसपैठिए — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.५७

५५.सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.५३

५६.जूठन — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.४३

५७.सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, प.१०१

५८. वही, पृ.५०

५९. वही, पृ.९९

६०.घूसपैठिए — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.९९

६१. सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, प.११६

६२. वही, पृ.११३

६३. वही, पृ.१२२

६४..घूसपैठिए — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.२८—२९

६५. वही, पृ.६६

उपसंहार

ओमप्रकाश वाल्मीकि समाजोन्मुख, चिंतनशील रचनाकार, हिंदी दलित साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर के रूप में सर्व परिचित है। उनका रचना संसार दलित जीवन का मात्र दर्पण ही नहीं, विश्वमानवता का आग्रही भी है । वाल्मीकि समता, स्वातंत्र्य, बंधुता तथा न्याय आदि मानवतावादी मूल्यों के हिमायती है। साहित्य सृजन का उनका उद्देश्य ही समाज प्रबोधन हैं । समाज प्रबोधन हेतु उन्होंने नाटक कंपनी भी चलाई, जिसके माध्यम से लोगों तक अपने विचार पहुॅचाऍ । दलित व्यक्तियों में जाकर खुली जमीन पर बैठकर उनसे वार्तालाप किए । वे मात्र साहित्यिक न होकर सच्चे अर्थों में सामाजिक कार्यकर्ता हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म ' चूहडा ' नामक दलित जाति में हुआ । इनके जन्मस्थान बरला में त्यागियों का हुक्म चलता था । त्यागियों की ज्यादतियों — अत्याचारों, अध्यापकों की वक्र दृष्टि, घर का खस्ताहाल स्थिति ने भी लेखक की ज्ञान लालसा को विचलित नहीं किया। घोर अभावों ने उनके मन में मानवता की अजस्र धारा प्रभावित की । उनका वैवाहिक जीवन सुखमय हैं परंतु उनकी कोई संतान नहीं हैं । वे अपने छात्रों, पाठकों के रूप में इस कमी की पूर्ति करते हैं । वे एक स्वच्छंद और सुलझे हुए इन्सान हैं । दलित होने के बावजूद वे सवर्ण द्वेष्टा नहीं हैं । उनकी कई कहानियों में दलितों के लिए आवश्यक परिवर्तन का आगाज सवर्ण पात्र करते दिखाई देते हैं — ' सपना ', ' सलाम ' आदि।

उनके कथा — साहित्य —‘ जूठन ’, ‘ घूसपैठिए ’, ‘ सलाम’ संग्रह की कहानियों का मुख्य उद्देश्य भारतीय समाज व्यवस्था के घिनौनेरूप को बेनकाब करते हुए दलित चेतना की वकालत करना है । ‘ सलाम ’ की रूढिवादी प्रथा हो या ‘ सपना ’ की परंपरावादी धर्मशास्त्रीय सोच, ‘ पच्चीस चौका डेढ सौ ’ की शोषण नीति हो या ‘ कुचक्र ’ की दमनकारी व्यवस्था, ‘ घूसपैठिए ’ का सवर्ण आतंक हो या ‘ शवयात्रा ’ का अंतरविरोध या ‘जंगल की रानी ’ की यौन शेषण की व्यवस्था । दलित चेतना छल — कपट के इन नाना रूपों को चित्रित कर दलितों को इससे सावधान करती है । उनका कथा साहित्य शोषण, अत्याचार, दमन, दूरावस्था, छल — कपट से भरी पडा है परंतु इसमें विद्रोह का अभाव है । वाल्मीकि की इन कहानियों में क्रांति दिखाई नहीं गई बल्कि क्रांति के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि बनाई गई है । वे कागजी क्रांति दिखाकर दलितों को आत्मसंतुष्ट करने में विश्वास नहीं रखते । वे अपनी कहानियों को क्रांति के उस पाडाव पर रोक देते हैं, जहॉ से आगे का रास्ता दलितों को अपनी मानसिकता, वैचारिकता और दलित चेतना के बलबूते पर स्वयं तय करना होगा । अर्थात् इन पात्रों को किस दिशा में मोडना है ? यह पाठक के विचार और संस्कार तय करेंगे ।

वाल्मीकि अपनी कहानियों में क्रांति की पृष्ठभूमि तैयार कर पाठकों के मन में एक कसमसाहट, बैचेनी और उद्वेग छोड जाते हैं । उनकी कहानियॉ समस्या को नहीं घटनाओं को प्रधान क्रम देती हैं । घटनाओं के विकास में ही समस्याएॅ अपना अस्तित्व दिखाती हैं । उनकी कई कहानियॉ मात्र घटनाओं को चित्रित कर उन स्थितियों को उजागर करती है । जो दलितों की दयनीय स्थिति की जिम्मेदार है जेसै — अम्मा, बैल की खाल, भय, मुबंई कांड, दिनेशपाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन, ब्रह्मास्त्र, हत्यारे आदि।

दलित चेतना का मुख्य उत्स शिक्षा है । दलित लेखकों में जो दलिततत्व के खिलाफ लडने की प्रेरणा पाई जाती है, वह शिक्षा का परिणाम है । वाल्मीकि ' जूठन ' आत्मकथा, ' सलाम ','घूसपैठिए ' की सभी कहानियों मे कमोबेश शिक्षा की वकालत करते हैं । ' सलाम' कहानी का हरिश पढा – लिखा है, उसमें स्वाभिमान चेतना है । इसी कारण वह सलाम की अपमान जनक परंपरा का विरोध करने का साहस दिखाता है। ' बैल की खाल ' के काले–भूरे अनपढ है पर वे अपने बच्चों को पढाना चाहते हैं । सतीश की पूरी जद्दोजहद शिक्षा के लिए ही है। ' ग्रहण ', ' अम्मा ' में भी शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया है । ' पच्चीस चौका डेढ सौ ' का सुदीप बिना शिक्षा के चौघरी की कुटीलता का भंडाफोड कैसे कर सकता था?, मुबंई कांड का सुमेर शिक्षित है अतः सवर्णों षडयंत्र को ताड जाता है, मैं ब्रह्णन नहीं हूँ, ब्रह्मास्त्र, दिनेशपाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन आदि कहानी उच्च शिक्षित पात्र शोषन की असलीयत जनते है तो यह अंत नहीं, प्रमोशन, घूसपैठिए के दलित शोषन के खिलाफ आवाज उठाते है । इस प्रकार वाल्मीकि शिक्षा को परिवर्तन की नींव मानते हैं । दलितों को अपनी स्थिति और सोच बदलने के लिए ' शिक्षा ' का ही सहारा लेना पडेगा यह उनकी स्पष्ट धारणा है क्योंकि वे स्वयं इसका उदाहरण हैं ।

दलित शिक्षित युवकों के प्रति उनकी एक शिकायत भी है । दलित शिक्षित लोग अपने समाज और दायित्व से मुँह मोड रहे हैं । जैसे – जैसे वे सुविधा भोगी होते जा रहे हैं, उन्हें अपने ही बांधव जाहील, मुर्ख और तुच्छ दिखाई देने लगे हैं । जिन शिक्षित लोगों से परिवर्तन की अपेक्षा की जाती है, वहीं अंधश्रद्धा, रूढि – परंपरा का निर्वाह करने लगे हैं – भय । पद, ओहदे, नोकरी तो आरक्षण से पा लेते हैं लेकिन जब आरक्षण के लिए लडने की बात आती है तो ये लोग कननी काट लेते हैं। वे एकता की बाते करते हैं, संघर्ष की बाते करते हैं लेकिन मैदान में आने

से कतराते हैं । इसीलिए दलित विकास को जो गति मिलनी चाहिए थी वह नहीं मिल सकी । अकेला आदमी सवर्ण जड व्यवस्था का कितना विरोध कर सकता है ? कहॉ तक अपने आपको बचा सकता है ? आखिर किसी — न — किसी रूप में सवर्ण जातिवादी मानसिकता उसे निगल ही लेती है — ' कुचक्र ', ' दिनेशपाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन ' ' घूसपैठिए ' ' गोहत्याा ' । इसलिए दलित शिक्षित लोग एक हो और दलित चेतना, दलित आंदोलन तथा दलित विकास को गति प्रदान करें।

शिक्षा के महत्व को प्रकट करने वाली वाल्मीकि की ' अंधड ' कहानी मूलत: हिनताबोध को प्रकट करती है । मि. लाल दलित है। उन्हें जाति के कारण कई अपमान, यातनाएॅ सहनी पडी । लेकिन नौकरी पाने के बाद अपने सभी परिजनों से संबंध तोडना उनके कायरता और दायित्वहीनता का परिचायक है । वाल्मीकि यहॉ प्रकारांतर से बताते हैं कि ऐसी स्थिति में मि. लाल जैसे उच्च पदस्थ व्यक्ति को करना यह चाहिए कि जो यातनाएॅ उन्हें सहनी पडी, वह उनके आने वाले दलित बांधवों को न सहनी पडे, इसके लिए भरसक प्रयास करें । न कि उनसे रिश्ता तोड अंधेरी खाई में धकेले। ' मैं ब्राह्मण नहीं हूॅ ', ' घूसपैठिए ' के पात्र भी अपने समााज से कटते हुए दिखाई देते है । इस प्रकार वाल्मीकि की कहानियॉ आगाह करती हैं कि दलित चेतना की लडाई मात्र बाहरी नहीं है । दलित साहित्य को यहॉ दूधारी तलवार — सा काम करना पडेगा । उसे सवर्ण अतिवादियों का विरोध कर; दलितों में जागृति, स्वाभिमान निर्माण करते हुए उन्हें अपने अस्मिता और अस्तित्व के लिए लडने की प्रेरणा देनी होगी।

ओमप्रकाश वाल्मीकि नारी शोषण के विभिन्न पहलुओं को अपनी कहानियों द्वारा वाणी देते हैं । नारी जीवन की त्रासदी, पीडा का

मुख्य कारण नारी देह है । उनका शारीरिक, मानसिक दोहन तो होता ही है पर मुख्यत: उनका यौन शोषण अधिक भयावह है । घर के चार दीवारी में अपने को महफूज समझने वाली सवर्ण नारियों को भी सवर्ण पुरूष मानसिकता नहीं बक्षती । यौन शोषण की पीडा को चुपचाप सहने वाली नारियों का तो भोग लिया ही जाता है । किंतु जो इसके लिए तैयार नहीं होती, उन पर नाना प्रकार के अत्याचार किए जाते हैं । उन्हें मजबूर किया जाता है हवस की इस खेल मे शरिक होने के लिए । ' खानाबदोश ' कहानी में उपरोक्त दोनों स्थितियॉ मौजूद है। परंतु यौन शोषण की अधिक भयावह स्थितियॉ ' जगंल की रानी ' एवं ' जिनावर ' कहानी में दिखाई देती है । ' यह अंत नहीं ', ' गोहत्याा ', ' अम्मा ' कहानियों में यौन शोषण की नाकाम कांशिशे दर्ज है ।

यौन प्रसंग संबंधी और एक कहानी ' सलाम ' संग्रह में है। इसमें शोषण, अत्याचार, ज्यादती की कोई गुंजाइश नहीं है । स्वाभाविकता, स्थिति सापेक्षिता और दो उपेक्षित जिस्मों का अपनी — अपी आवश्यकता के लिए एकत्र आना अधिक महत्वपूर्ण है । इसलिए ' ग्रहण ' कहानी का 'यौन प्रसंग' शोषण में नहीं आ सकता । रमेसर के साथ जो हुआ वह महज हादसा था । उस हादसे के बाद उसके अंतस में उठने वाली लहरे उसके आकर्षण का परिणाम है । बहु के मन में न खोट है और न यह क्रिया पूर्व नियोजित थी । जो हुआ मात्र आकस्मात घटित हुआ था । ' बिरम की बहू ', 'ग्रहण' कहानी का ही क्रमिक विकास है।

हिंदी दलित कथा साहित्य में ओमप्रकाश वाल्मीकि की उपस्थिति एक विशिष्ट घटना है। उनकी ' जूठन ' आत्मकथा,' सलाम ' एवं ' घूसपैठिए ' कहानी संग्रह दलित साहित्य में विशेष स्थान क अधिकारी हैं। संवेदना, कथ्य, भाषा, शैली आदि अनेक विशेषताओं से

विशेषित ‘ जूठन ’,‘ सलाम ’,‘ घूसपैठिए ’ दलित साहित्य पर आक्षेप उठाने वालों के सामने एक आदर्श उदाहरण है ।

आत्मकथा और कहानियों की भाषा सयंत, प्रवाहपूर्ण और तणाव को भलि — भॉति व्यक्त करने वाली है । चरित्र — चित्रण में भी उन्हें अत्याधिक सफलता मिली है । वाल्मीकि पात्रों के बाह्य वर्णन से ही संतुष्ट न होकर उनके मनोवैज्ञानिक चित्रण पर बल देते हैं । पात्रों के मन में उठने वाले भावों को भी वाल्मीकि चरित्र — चित्रण के माध्यम से पाठकों के सामने प्रकट करते हैं । पात्रों के अंतस का विश्लेषण कर सूक्ष्म — से — सूक्ष्म छटाओं के चित्रण में वाल्मीकि सिद्धहस्त है । उनके चित्रण में इतनी सूक्ष्मता है कि पात्र अपने पूरे वजूद के साथ पाठकों के सामने साकार होने लगते हैं । ‘ अम्मा ’ हो या ‘ काले — भूरे ’ ‘ मि. लाल ’, ‘ अजब सिंह ’ या ‘ कूडाघर की बुआ ’ का उन्हें चरित्र में खूब सफलता मिली है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के घटना और वातावरण निर्मिती में भी सहजता एवं स्वाभाविकता देखी जा सकती है । उन्होंने भट्टे के वातावरण का, मूर्ति प्रतिष्ठापन समारोह का, ‘ सलाम ’ कहानी में चाय प्रसंग का, मुबंई कांड, कूडाघर कहानी कं पपत्रों की मनोवृत्ति का इतनी बारिकी से वर्णन किया है कि उक्त घटनाओं के स्थलों पर स्वयं उपस्थित होने का आभास होने लगता है । घटनाओं की सहजता और वातावरण की संगति वाल्मीकि की कहानियों को विश्वसनीय बनाती है । घटनाएॅ संघर्ष की हो, विरोध की हो, तणावपूर्ण हो, उद्वेगजन्य हो या प्रणय प्रसंग से संबंधित, घटनाओं के रेशे — रेशे का चित्रण करते समय वे अपने उपर कमाल का नियंत्रण रखते हैं । उनके चित्रण में जल्दबाजी, उच्छृंखलता या ओछापण नहीं है।

भाषा भावों के अभिव्यक्ति का साधन है। भाषा के प्रति वाल्मीकि बहुत ही सतर्क है । उनकी भाषा संयत, प्रसंगानुकूल, पात्रों की स्थिति और मनोदशा के अनुरूप है । उनके पात्रों के शिक्षित – अशिक्षित, मालिक – नौकर, स्त्री – पुरूष आदि के भाषा शुद्ध परिनिष्ठित हिंदी है । उनके आत्मकथा और कहानियों में प्रयुक्त भाषा में पात्रों के क्षेत्रीयता के अनुसार देहाती, कस्बाई, शहरी, शिक्षित, पंजाबी मिश्रित आदि रूप भिन्नता पाई जाती है । वाल्मीकि की भाषिक सजगता ने संवादों मे सटीकता, रोचकता, नाटकीयता, लघुता आदि गुणों का सन्निवेश किया है।

अतः ओमप्रकाश वाल्मीकि में चित्रण की प्रचूर क्षमता है और सटीक संवाद लिखने की योग्यता भी, जो संग्रह की कहानियों को जानदार बनाती है । उनके चित्रण में सूक्ष्मता ही नहीं स्तरियता भी है । घटनाओं के चित्रण में अत्याधिक सटीकता तथा सजीवता होने के कारण किसी रंगमंच पर दृश्य देखने का आभास होने लगता है । भाषिक अनेक रूपता, वर्णन की सूक्ष्मता, संवादों की नाटकीयता, चरित्र – चित्रण की योग्यता तथा कथ्य की प्रामाणिकता ने कहानियों को विश्वसनीय बनाया है । कुल मिलाकर ओमप्रकाश वाल्मीकि का कथा–साहित्य भाषा, शैली, संरचना, संवेदना, कथ्य तथा चरित्र – चित्रण आदि की दृष्टि से विशिष्ट है ।

निष्कर्षात्मक बिंदू

- ओमप्रकाश वाल्मीकि स्वयं दलित है । वे सवर्णों के अन्याय, अत्याचार के चित्रण में कहीं कोताही नहीं बरतते; परंतु वे सवर्ण द्वेष्टा नहीं हैं । वे सवर्ण मानसिकता का जमकर विरोध करते हैं। जो दलितों के विकास में व्यवधान खडे करती है।
- ओमप्रकाश वाल्मीकि के कहानी संग्रहों एवं आत्मकथा में भारतीय समाज व्यवस्था के अमानवीय रूप को चित्रित कर उसके परिवर्तन

की उपेक्षा व्यक्त की है । वाल्मीकि ऐसी व्यवस्था के आवश्यकता पर बल देते हैं जिसमें सवर्ण – दलित तथा स्त्री – पुरूष बिना किसी भेद – भाव के साँस ले सके।

❖ कथा – साहित्य में चित्रित घटनाएँ द्वेष भाव से नहीं बल्कि दलितों को सवर्णों के शोषण नीति से परिचित कराने तथा दलित शोषण पर आधारित भारतीय समाज व्यवस्था तथा सवर्ण तबकों के मानसिक परिवर्तन के लिए चित्रित की गई है।

❖ ओमप्रकाश वाल्मीकि भारतीय नारी की हीन दशा को अपनी कहानियों के माध्यम से उजागर करते हैं । नारी चाहे सवर्ण हो या दलित ; घर की चार दीवारों के बाहर हो या भीतर, वह शोषण के लिए अभिशप्त है । वाल्मीकि नारी शोषण के विभिन्न पहलुओं को पाठकों के सामने लाकर उनके परिस्थिति में सुधार की अपेक्षा करते हैं ।

❖ ओमप्रकाश वाल्मीकि दलितों के मुक्ति के लिए ' शिक्षा ' को अत्याधिक तथा महत्वपूर्ण तथ्य मानते हैं। उनके कथा – साहित्य की अधिकतर कहानियाँ तथा आत्मकथा के कई प्रसंग कमोबेश ' शिक्षा ' की वकालत करते हैं । कहानियों के पात्रों को इस बात का एहसास हैं कि उनकी दूरावस्था का कारण ' शिक्षा का अभाव ' है।

❖ ओमप्रकाश वाल्मीकि का कथा – साहित्य मात्र सवर्णों के अत्याचारों को चित्रित कर चुप नहीं बैठता। वे दलितों की कमियों को भी प्रकाश में लाती हैं। शिक्षित दलितों के सुविधा – भोगी स्वभाव, उनमें व्याप्त हीनताबोध, अंधविश्वास तथा सवर्णों के अंधानुकरण की प्रवृत्ति आदि का चित्रण कर इन दोषों को त्यागने की सीख देता हैं।

- ❖ वाल्मीकि के कथा — साहित्य में विद्रोजन्य स्थितियॉ कम दिखाई देती हैं । वे कागजी क्रांति दिखाकर दलितों को आत्मसंतुष्ट नहीं करना चाहते । उनकी कहानियॉ पाठकों के मन में बेचैनी, कसमसाहट पैदा करती हैं । ये कहानियॉ क्रांति के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार करती है।
- ❖ भारतीय समाज में वर्णव्यवस्था के बीज बोने का और उसके संरक्षण का काम भले ही ब्राह्मणों ने किया हो; परंतु परिवर्तन के अंगीकार में वे आज अन्य सवर्ण तबकों से आगे हैं। आज वर्णव्यवस्था की कट्टरता बीच के (क्षत्रिय, वैश्य) वर्णों में अत्याधिक दिखाइ देती है । ओमप्रकाश वाल्मीकि का कथा — साहित्य समाज के इस तथ्य को उजागर करती हैं।
- ❖ ओमप्रकाश वाल्मीकि शहरी एवं ग्रामीण दोनों प्रकार के दलित जीवन को बडी कुशलता के साथ चित्रित करते है, उनकी मानसिकता, भाषा, व्यवहार, स्वभाव, चेतना तथा प्रतिक्रियाओं को सूक्षमता से चित्रित किया है ।
- ❖ ओमप्रकाश वाल्मीकि के कथा — साहित्य में सवर्ण एवं दलित नारी का का चित्रण उनके परिवेश, स्वभाव, आर्थिक स्थिति, अचार — विचार तथा मान्यता के अनुकूल हुआ है, किंतु सवर्ध तथा दलित नारी के जाति अहंकार तथा जाती द्वेष को स्पष्टमा से देखा जा सकता है , जो दो की चेतना और उद्दश्य को अलग कर देता है ।
- ❖ वाल्मीकि के कथा — साहित्य में दलित जीवन का चित्रण दलित समााज के गुण — दोषें के साथ चित्रित किया है, काल्पनिक या आदर्श पात्रों के बजाय वे वास्तविकता को महत्व देते है, जो उनके कथा — साहित्य को न केवल विश्वसनीय बनाता है बल्कि उसकी प्रमाणिता को दर्शाता है

❖ परिशिष्ट

अ. आधार ग्रंथ

१. घूसपैठिए— ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, जगतपुरी, दिल्ली — ५१

२. जूठन — ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, जगतपुरी, दिल्ली — ५१

३. सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, जगतपुरी दिल्ली — ५१

४. बस बहुत हो चूका—ओमप्रकाश वाल्मीकि, वाणी प्रकाशन, २१ए, दरियागंज, नई दिल्ली—०२

५. सदियों का संताप—ओमप्रकाश वाल्मीकि, गौतम बुक सेंटर, शाहदरा, नई दिल्ली—९३

६. सफाई देवता—ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, जगतपुरी, दिल्ली — ५१

७. दलित साहित्य : अनुभव, संघर्ष, यर्थाथ—ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, जगतपुरी दिल्ली — ५१

८. दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र—ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, जगतपुरी दिल्ली — ५१

आ.संदर्भ ग्रंथ

१. आज का दलित साहित्य — डॉ. तेज सिंह, अतिश प्रकाशन,

हरिनगर, दिल्ली — ६४

२. आधुनिक हिंदी कथा साहित्य और चरित्र विकास — डॉ. बेचन, संमार्ग प्रकाशन, दिल्ली

३.आंबेडकरवादी साहित्य विमर्श—ईश गंगानिया—किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली—०२

४. ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों का अनुशीलन — बाबासाहेब कामण्णा, शिवाजी विद्यापीठ, कोल्हापुर

५. ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में सामाजिक लोकतांत्रिक चेतना — सं. हरपाल सिंह 'अरूष', जवाहर पुस्तकालय, मथुरा (उ.प्र)

६. गद्य के प्रतिमान — विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद — १

७.दलित विमर्श — डॉ. नरसिंहदास खेमदास वनकर, चिंतन प्रकाशन, कानपुर — २१

८. दलित विमर्श की भूमिका — कंवल भारती,इतिहास बोध प्रकाशन, तेलियागंज, इलाहाबाद

९. दलित साहित्य : एक आकलन — बाळकृष्ण कवठेकर, अजब प्रकाशन बी. के. कोल्हापुर

१०.दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र — ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

११. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र — डॉ. शरणकुमार लिंबाळे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

१२.दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र — डॉ. रामअवतार यादव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

१३. नई कहानी : कथ्य और शिल्प — डॉ. संतबख्श सिंह शेखावत, अभिनव भारती प्रकाशन इलाहाबाद

१४.नई कहानी संदर्भ और प्रकृति — देवीशंकर अवस्थी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली — ११०००२

१५.नाट्यविमर्श — नरनारायण राय, संमार्ग प्रकाशन, दिल्ली — ७

१६. भाषाविज्ञान — डॉ. भोलानाथ तिवारी, किताब महल, इलाहाबाद

१७. शैली और शैली विज्ञान — पांडेय शशिभूषण 'शीतांशु' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली — २

१८. शैली विज्ञान — डॉ. भोलानाथ तिवारी, शब्दकार प्रकाशन, तुर्कमानगेट दिल्ली — ६

१९. श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों का शिल्प विधान — प्रा. पी. वी. कोटमे, पुणे विद्यापीठ (शोध प्रबंध)

२०.हिंदी और मराठी दलित साहित्य—डॉ. सुनिता साखरे— अमन प्रकाशन, कानपुर—१२

२१. हिंदी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग — डॉ. त्रिभुवन सिंह, हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी

२२. हिंदी — उर्दू उपन्यास : बदलते परिप्रेक्ष्य — डॉ. प्रेम भटनागर, अर्चना प्रकाशन, जयपुर

२३ हिंदी कहानी की शिल्पविधि का विकास — डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, साहित्य भवन, इलाहाबाद

२४. हिंदी भाषा व्याकरण और रचना — डॉ. अर्जुन तिवारी

२५. साहित्य और दलित चेतना— गो. म. कुलकर्णी

२६. सौंदर्य विमर्श — डॉ. पूरनचंद टंडन, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली—०२

२७. सौंदर्य शास्त्र के उपादान—डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ, एम. बी. पब्लिशर्स एंड डिस्टीब्युअर्स, जयपुर

इ. कोश ग्रंथ

१. अभिनव मराठी — मराठी शब्दकोश — सं. द. ह. अग्निहोत्री, व्हीनस प्रकाशन, पुणे

२. आदर्श मराठी शब्दकोश — सं. डॉ. प्रल्हाद नरहर जोशी, विदर्भ मराठवाडा बुक कंपनी, पुणे — २

३. नालंदा अद्यतन कोश — सं. पुरूषोत्तम अग्रवाल, आदीश बुक डिपो, नई दिल्ली — ५

४. नालंदा विशाल शब्दसागर — सं. नवलबी, आदीश बुक डिपो, नई दिल्ली — ५

५. बृहत् हिंदी कोश — सं. कालिका प्रसाद, ज्ञानमंडल प्रकाशन, बनारस — १

६. मानक हिंदी कोश (पॉचवा खंड) सं. रामचंद्र वर्मा, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

७. व्यावहारिक हिंदी — अंग्रजी कोश — सं. महेंद्र चतुर्वेदी, नैशनल पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली

८. शिक्षार्थी हिंदी ाब्दकोश — सं. डॉ. हरदेव बाहरी, राजपाल ॲण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली

९. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ — सं. द्वारिकाप्रसाद शर्मा

१०. संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर — सं. नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

११. हिंदी शब्द सागर (नवॉ भाग) — सं. नागरी मुद्रण, वाराणसी

१२. हिंदी साहित्य कोश — सं. धीरेंद्र वर्मा, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी

ई. पत्र — पत्रिकाएँ

१. आलोचना — सं. अरूण कमल, राजकमल प्रकाशन, नेताजी सुभाषचंद्र मार्ग, नई दिल्ली — २

२. कथाक्रम (अप्रैल — जून २००४) — डॉ. जयप्रकाश कर्दम (संकलित लेख)

३. कथादेश— सं. हरिनारायण,सहयात्रा प्रकाशन, दिलशाद गार्डन, नई दिल्ली—९५

४. तद्भव — सं. अखिलेश — नवीन शहदरा, दिल्ली — ३२

५. दै. सम्राट — सं. बबन कांबळे, टिळकनगर, चेंबूर, मुंबई

६. पहल — सं. ज्ञानरंजन, पहल प्रकाशन, रामनगर, आधारताल, जबलपुर—०४

७. बयान — सं मोहनदास नैमिशराय, ५ए/३बी, पश्चिम विहार, नई दिल्ली—६३

८. राष्ट्रवाणी (मई — जून २००७) — सं. प्रा. सु. मो. शहा — महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे — ३०

९. वागर्थ—सं. प्रभाकर श्रोत्रिय,भारतीय भाषा परिषद, शेक्सपीयर सरणी कलकत्ता — १७

१०. संचारिका —सं. नारायण वाकळे, महारा ट्र हिंदी प्रचार सभा, औरंगाबाद — १

११. हंस — सं. राजेंद्र यादव,अक्षर प्रकाशन, अन्सारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली — २